ॐ श्री सत्नाम साक्षी

सत्य की खोज

–: प्रवचन :–

सत्गुरु स्वामी हरिदासराम जी महाराज

:: प्रकाशक ::

श्री 108 स्वामी भगत प्रकाश जी महाराज

श्री अमरापुर स्थान, एम.आई.रोड, जयपुर

सर्वाधिकार सुरक्षित

तृतीय संस्करण – 1000

प्रकाशकः

स्वामी भगत प्रकाश जी महाराज

श्री प्रेम प्रकाश मण्डल (ट्रस्ट)

श्री अमरापुर स्थान, जयपुर – 302001

चैत्र मेला वर्ष-2010

भेटा : 15/–

मुद्रक :

गणपति, जयपुर

फोनः9828112907

ॐ श्री सत्नाम साक्षी

दो शब्द

महापुरुषों के मुखारविन्द से कल्याणकारी वचनों की वर्षा होती है। निस्वार्थता एवं निष्कामता रूपी दो हीरे जिनके दामन में होते हैं–उनके मुख से निःसृत शब्द गंगा, प्रभु परमात्मा से मिलाने वाली डोर बन जाती है। उस शब्द रूपी डोर को पकड़ कर जिज्ञासु अपनी परम–पथ की यात्रा तय करते हैं। संशय, भ्रमों को निवारण करने वाली उनकी निर्मल वाणी के पीछे उनके जीवन की गहन साधना एवं साथ–साथ गुरु कृपा भी छिपी रहती है। जब मन से सांसारिक इच्छाओं की निवृत्ति हो जाती है एवं समर्पण की प्रबल भावना हृदय सागर में ''हिलोरे'' लेने लगती है तब अनायास ही गुरु कृपा बरसती है और उसी परमावस्था–योगावस्था में निमग्न योगी, स्वयं भी परमात्मा से नित्य योग को प्राप्त होता है एवं पूर्ण अनुसरण करने वाले जिज्ञासु को भी उस लक्ष्य तक पहुंचाने की सामर्थ्य रखता है।

प्रस्तुत पुस्तिका **सत्गुरु स्वामी हरिदास राम जी महाराज** की अनुभव वाणी का संकलन है। तत्त्ववेत्ता योगियों की वाणी को समझने के लिए, जिस जिज्ञासा एवं तत्परता की आवश्यकता होती है। सत्गुरु के प्यारे श्री प्रीतमदास प्रेमप्रकाशी ने उसी लगन के साथ अत्यन्त रुचिपूर्वक संकलन का शुभ कार्य किया है। इस ज्ञान गंगा में डुबकी लगाकर हम भी अपने जीवन को सफल बनाएं।

स्वामी भगत प्रकाश

श्री अमरापुर स्थान, जयपुर

ॐ श्री सत्नाम साक्षी

स्तुति

जय जय जय टेऊँराम स्वामी, कृपा करो प्रभु अन्तर्यामी।
बुरे भले गर हैं तो तुम्हारे, जीते हैं हम तेरे सहारे।
हम हैं तुम्हारे तुम हो हमारे, बार बार लख बार नमामी॥
चेलाराम के तुम हो नन्दन, मां कृष्णा के नित सुख वर्धन।
भव भय भंजन जन मन रंजन, बार बार लख बार नमामी॥
खण्डू नगर के नटवर नागर, अमरापुर के नित सुख सागर।
प्रेम प्रकाशी पंथ दिवाकर, बार बार लख बार नमामी॥
तुम ही सत् हो तुम ही चित हो, तुम ही आनन्द एक अनन्त हो।
तुम ही गति हो तुम ही मति हो, बार बार लख बार नमामी॥
तुम ही सद्गुरु तुम पितु माता, तुमही हरि हर तुम ही विधाता।
हम हैं भिखारी तुम हो दाता, बार बार लख बार नमामी॥
जय जय जय टेऊँराम स्वामी, कृपा करो प्रभु अन्तर्यामी।

ॐ श्री सत्नाम साक्षी

प्रस्तावना

जीवित जग में मरत जो, तां पर छत्र झुलंत।
टेऊँ जग तिहं पूजते, जान रूप भगवंत।।

जीव तो साक्षात् परमात्मा का ही अंश है, नित्य प्राप्त परमात्व तत्त्व के साथ उसका नित्य योग है, पर माया के आवरण से वह ढका रहता है। इसलिए अपने ''निज स्वरूप'' पर कभी उसकी दृष्टि जाती ही नहीं और यदि कभी चली भी जाये तो वह स्थिर नहीं रहती। यदि जीवन में उत्कृष्ट अभिलाषा जागृत हो जाये तो ''नित्य प्राप्त तत्त्व'' पर दृष्टि की स्थिरता बनी रहती है, तो फिर ऐसी अभिलाषा जागृत करे कौन ? सत्संग तो जीवन में वह बहुत सुनता है फिर भी जागता ही नहीं। कौन उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न करे? जिससे वह अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये आगे बढ़ सके। हमारे परम श्रद्धेय सद्गुरु स्वामी हरिदासराम जी महाराज के प्रवचन प्रेमियों, जिज्ञासुओं व शिष्यों को श्रवण के बाद मनन करने को बाध्य कर देते हैं।

भारत की भूमि तप की भूमि कहलाती है ओर उसका इतिहास संत, महात्माओं, ऋषियों, तपस्वियों के जीवन से भरा पड़ा है पर इतनी बड़ी दुर्लभता अपने जीवन में शायद ही कोई संत, महात्मा, ऋषि अपने आप में लिये हुए हो जो दुर्लभता हमारे सत्गुरु स्वामी हरिदास राम जी महाराज में थी। भगवान श्रीराम के मन में उठने वाली जिज्ञासाओं का उत्तर उनके गुरु वशिष्ठ जी कैसे देते हैं? अर्जुन के मन में उठने वाली जिज्ञासा का जवाब उनके गुरु भगवान श्रीकृष्ण कैसे देते हैं ? और हम सभी ''प्रेमप्रकाशियों'' के मन में उठने वाली जिज्ञासा का जवाब हमारे आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज कैसे देते हैं ? उन सबकी जिज्ञासाओं की अभिव्यक्ति उनके गुरुओं के अनुसार उनके ही शब्दों के माध्यम से एक ही साधक, एक ही योगी के द्वारा व एक ही समय पर करना कोई साधरण साधना का परिणाम नहीं बल्कि उनके द्वारा तीव्र गति से की गई तीक्ष्ण साधना का परिणाम ही है।

भारतीय ऋषियों, मुनियों के इतिहास को जब हम देखेंगे तो इतनी ''दुर्लभ विशेषता'' लिए शायद ही कोई योगी हमें देखने को मिले। सौभाग्य हम सभी प्रेम प्रकाशियों के जीवन में हमें ऐसे सत्गुरु स्वामी हरिदास राम जी महाराज मिले। उनके द्वारा किये गये प्रवचनों को **''सत्य की खोज''** में प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रीतम प्रेमप्रकाशी
जयपुर

अनुक्रम

प्रवचन 1
पदार्थों का विस्तार कितना - अन्त तक या अर्थ तक ।

प्रवचन 2
गुरु भक्ति से ही ज्ञान की प्राप्ति ।

प्रवचन 3
"परम शान्ति की अनुभूति" प्रकृति से उत्पन्न गुणों से सर्वथा भिन्न।

प्रवचन 4
अपने स्वरूप को जानना ही जीवन का वास्तविक लक्ष्य।

प्रवचन 5
मन, बुद्धि, गुरु को अर्पित किये बिना काम बनने वाला नहीं।

प्रवचन 6
जड़ चेतन की गुत्थी - साधक के चिन्तन का विषय।

प्रवचन 7
सन्यास का अर्थ है जागना।

प्रवचन 8
सत्य बोध के उपरान्त प्रकृति सहायक बन जाती है।

प्रवचन 9
गुरु मंत्र के सहारे ही तत्त्व की प्राप्ति संभव।

ॐ श्री सत्नाम साक्षी

॥ मंगलाचरण ॥

नमोस्त्वनन्ताय सहस्र मूर्तये, सहस्र पादाक्षि शिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्र कोटिर्युग धारिणे नमः।।

योगीन्द्र वृन्दैः परिसेविताय, भक्तार्तिनाशे कृतानिश्चयाय।
सर्वात्म भावे परिनिष्ठिताय, श्री टेऊँरामाय नमः शिवाय।।

सहनाववतु सहनौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विना वधीतमस्तु, मा विद्विषावहै।।

प्रार्थना

सद्गुरु सर्वानन्द हमें, अभय दान दीजिये।
अभय दान दीजिये, कर्म काट लीजिये ।।

हे अखण्ड हे अपार, ज्ञान ध्यान के भण्डार।
बार - बार नमस्कार, स्वीकार कीजिये।।

पतित पावन पाप हरो, सिर पे दया हाथ धरो।
अधम का उद्धार करो, भव से पार कीजिये।।

उमर सारी पाप भारी, करत करत मति है मारी।
क्षमा करो एक बारी, सुमति दान दीजिये।।

तुम्हें छोड़ कहां जाऊँ, सूझत नहीं ठौर काहूं।
बार-बार पड़त पाऊँ, शरण राख लीजिये।।

तो फिर रसना को जगाने के लिए क्या बोलना होगा? राम-राम तो सभी जपते हैं। देवी-देवता तो सबको प्यारे हैं। किसी को राम प्यारा है, तो किसी को श्याम प्यारा है, किसी को शिव प्यारा है तो किसी को गणेश प्यारा है। किसी को हनुमान प्यारा है तो किसी को देवी प्यारी है। सभी अपने-अपने प्रीतम को याद करते हैं। जब सभी लोग किसी न किसी को याद करते है तो श्री गुरु महाराज जी भी किसी को तो याद करते होंगे?

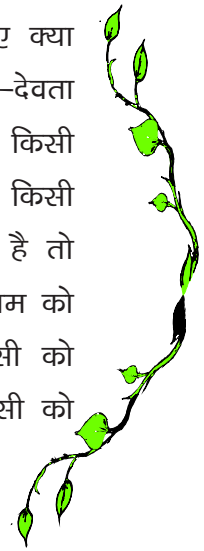

प्रवचन - 1

पदार्थों का विस्तार कितना! अन्त तक या अर्थ तक

इन्हीअ निंड निहोड़िया, विझी जाल जोड़िया।
लखें लहर लोढ़िया, भव सिन्ध भेरे।।
सुबुह जो सवेरे, गहरी निण्ड घेरे।
अची आलसिनि खे, कन्ध भरि केरे।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज वे स्वयं को ही समझाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। वह कैसा? समय बीता जा रहा है। और यदि तुम्हें समय के रहते ही ऐसे तत्त्व की प्राप्ति करनी है जिसको प्राप्त कर लेने के पश्चात् तुम्हें लगे कि अब न तो कोई संसार है और न मैं ही हूं जिस परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए मेरा जन्म हुआ है उसको समय रहते ही मैंने प्राप्त कर लिया है।

रैन गयी पुनि दिन भया, दिवस गया भयी रात।
कह टेऊँ मन चेत ले, आयू ऐसे जात।।

श्री गुरु महाराज जी कह रहे हैं कि समय के रहते ही, जीवन के रहते ही जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर ले, फिर क्या पता समय मिले या ना मिले? जैसे देखा भी गया होगा कि हमारे जीवन में कई दीपावलियां आयी होगी। किसी ने अपने जीवन में दस देखी होगी, तो किसी ने बीस, किसी ने पचास व किसी ने सौ भी देखी होगी और एक कल आने वाली है। हमारे सौभाग्य जो हमें एक बार फिर उसे देखने को मिल रहा है। अगली दीपावली हमारे जीवन में आये या न भी आये उसका कुछ भी अता–पता नहीं। जब ऐसी बात है तो शरीर का भी कुछ अता–पता नहीं। जिसके साथ न जाने कितने ही लोग जुड़े रहते हैं। रुपये पैसे, जमीन जायदाद न जाने कितने ही सम्बन्ध बने रहते हैं। जब तक शरीर में प्राण है तब तक शरीर के साथ सम्बन्ध रखने वाली कई बातें होती हैं तो फिर हमें हमारे जीवन के रहते हुए क्या करना होगा? शरीर के साथ सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों का क्या करना होगा? उनका विस्तार किया जाय या नहीं? यदि किया जाये तो कितना – उसके अन्त तक या अर्थ तक? विस्तार का अन्त तो होता ही नहीं। इसका अर्थ क्या हुआ? हमें विस्तार के अर्थ को भी समझना पड़ेगा। जब शरीर का ही कोई भरोसा नहीं तो फिर पदार्थों का क्या भरोसा कि वे भी साथ रहेंगे या

नहीं। किसी का भी कुछ भरोसा नहीं। तो फिर करें तो क्या करें? क्या नहीं करें? कुछ अता–पता नहीं। तो फिर विचार करना होगा। कहते हैं – श्रीराम जी जब यहां पर पधारे थे, पर कब पधारे थे? त्रेता युग में। पर कौनसा त्रेता युग? ये चक्कर तो युगों का चलता ही रहता है। कहते हैं–जब चौकड़ी युगों की 71 बार घूमती है तब कहीं जाकर ब्रह्मा जी का एक दिन बीतता है। इस प्रकार 71 बार सत्युग 71 बार त्रेता युग, 71 बार द्वापर युग व 71 बार कलियुग आता है तब ही कहीं जाकर युगों की चौकड़ी पूरी होती है। अब ये कलियुग न जाने कौनसा है? और त्रेता युग न जाने कौनसा? ब्रह्मा जी के कितने वर्ष बीत गये होंगे। ये तो केवल एक दिन की बात है। उनकी आयु सौ वर्ष तक की बतलायी गयी है और वही समय महासर्ग से महाप्रलय तक का भी कहा गया है। अब यह ब्रह्मा जी का कौनसा वर्ष है, कुछ अता–पता नहीं है। ''भूतग्रामः स एवायम्'' भगवान के शब्द हैं–अर्जुन। जितने भी प्राणी समुदाय (जीव–जन्तु) हैं वे झुण्ड के झुण्ड ब्रह्मा जी के दिन के समय उनके सूक्ष्म–शरीर से निकलते रहते हैं, उतने ही झुण्ड के झुण्ड ''भूत्वा भूत्वा प्रलीयते'' ब्रह्मा जी की रात्रि के समय उनके सूक्ष्म शरीर में लीन भी हो जाते हैं। ये सब क्यों आते हैं? किसलिए आते हैं? कुछ अता–पता नहीं। जीव के शरीरों में परिवर्तन होता रहता है परन्तु जीव उन शरीरों के परिवर्तन को अपना परिवर्तन और उनके जन्मने–मरने को अपना जन्म–मरण

मानता रहता है और इसी मान्यता के कारण उसका जन्म–मरण होता रहता है। जीव स्वयं साक्षात् सत्स्वरूप ही है भूतग्रामः स एवायम् और उसका शरीर पैदा होकर फिर विनाश की ओर जाता है। भूत्वा भूत्वा प्रलीयते इसलिए हर जन्म में पैदा होकर शरीर को धारण करना परधर्म है और मुक्ति को प्राप्त करना स्वधर्म है। जो सभी प्राणियों का परम लक्ष्य भी है उसके लिए ही श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि समय के रहते ही, जीवन के रहते ही उसे प्राप्त कर।

धनतेरस का पर्व क्यों मनाया जाता है?

श्री गुरु महाराज जी बतला रहे हैं कि यह कैसे पता लगाया जा सकता है कि भगवान श्रीराम कब आये ? त्रेता युग में। पर कौनसा त्रेता युग ? कल कौनसा दिन था ? धनतेरस। पर धनतेरस क्या होती है ? कहते हैं – धनतेरस के दिन बर्तन खरीदो। सोना–चांदी खरीदो। कोई बता सकता है कि धनतेरस के दिन ही बर्तन क्यों खरीदे जाते हैं ? क्या फिर दूसरे दिन नहीं मिल सकते? धनतेरस के दिन ही लोग मकान बनवाना शुरू करते हैं। कपड़े सिलवाते हैं। अनाज खरीदते हैं आदि। पर ऐसा क्यों? किसी ने कहा – आज के दिन ही अयोध्या में श्री हनुमान जी आये थे – यह खबर देने कि भगवान श्रीराम अयोध्या पधार रहे हैं और किसी ने कहा – चिकित्सा जगत के इष्टदेव भगवान धनवन्तरि के अवतार का दिन है – धनतेरस। आज के दिन ही समुद्र

मन्थन के दौरान अमृत कलश को लेकर भगवान धनवन्तरि प्रकट हुए थे। आजकल कुछ लोग इसे धन व वैभव के प्रदर्शन के रूप मे भी मानते हैं । पर असली चीज क्या है कुछ अता पता नहीं। कबसे चली आ रही है इस धनतेरस के पर्व को मनाने की परम्परा, इसका कोई छोर नहीं।

लक्ष्य की प्राप्ति में पुरुषार्थ की प्रधानता

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं – मनुष्य के लिए चार पुरुषार्थ बतलाये गये हैं – धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष। उसमें अर्थ व काम (भोग) में तो प्रारब्ध की प्रधानता है, पुरुषार्थ गौण हो जाता है। जितना भाग्य में लिखा हुआ है उतना ही मिलेगा उससे अधिक नहीं। पर धर्म व मोक्ष में पुरुषार्थ की प्रधानता है। यहां पर प्रारब्ध गौण हो जाता है। कहते हैं – विस्तार का अन्त नहीं तो इसका अर्थ क्या हुआ, जीवन में सो जायें कुछ करें नहीं – तो श्री गुरु महाराज जी कहते है कि ऐसा है नहीं। यदि तुम्हें जीवन में तत्त्व की प्राप्ति करनी है तो दौड़ लगाओ, नींद मत करो, भागो। जितना भाग सकते हो। क्योंकि धन–दौलत को प्राप्त करना तुम्हारा लक्ष्य नहीं वह तो उतनी ही मिलेगी जितनी भाग्य में है उसे तो कोई मिटा ही नहीं सकता। कहा भी गया है :–

डुकीं तोड़े तकड़ो, तोड़े हलीं विख।
लिखे मझां लिख, लहे कीन लतीफ चवे।।

इसका अर्थ यह नहीं कि जीवन में कुछ करें ही नहीं। मरना है तो खायें नहीं। मरना है तो पीयें नहीं, मरना है तो कहीं जाये नहीं। अब जब जीवन में मरना ही है तो मरने से पहले जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लें, तब ही कहीं जाकर मनुष्य जन्म की सार्थकता है तो क्या करना होगा?

जागे रसना हरिगुण उचरे, विषय वासना विष रस विसरे।
एक अमी रस पीत, हरि जप, जाग जिज्ञासू जीत ।।

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं :– कि परम तत्त्व की प्राप्ति के लिये तुम अपनी रसना को जगाओ। रसना सोती है या जागती भी है? क्या करती है? फिर रसना को जगाने का अर्थ क्या होता है? नाम का स्मरण कर । उसका सुमिरन तो सब करते हैं। है कोई ऐसा जो राम–राम न कहता हो, श्याम–श्याम न कहता हो, शिव–शिव न कहता हो। सभी की रसना राम–राम, श्याम–श्याम, शिव–शिव कहती है या नहीं। नहीं कहती तो बतलाइये। इसका अर्थ हुआ कि हम सब लोग जागते रहते हैं। फिर कौनसी रसना को जगाने के लिए कहा जा रहा है? उसको क्या करना होगा?

ऐसी वाणी बोलिये, कोई न कहे झूठ।
ऐसी जगह बैठिये, कोई न कहे ऊठ।।

ऐसा भी नहीं बोलना चाहिये कि वह झूठ हो, और फिर ऐसा भी नहीं बोलना चाहिये कि लोगों को लगे कि यह सब बढ़–चढ़कर बोल रहा है। श्री गुरु महाराज जी कहते हैं

कि बिना कारण भी नहीं बोलना चाहिये। जब कोई कारण हो तब ही बोलना चाहिये। बोलने की कोई बुनियाद हो, अर्थात् अपने काम की कोई बात हो तब ही बोलना चाहिये वरना नहीं। ''तो फिर रसना को जगाने के लिए क्या बोलना होगा? राम–राम तो सभी जपते हैं। देवी–देवता तो सबको प्यारे हैं। किसी को राम प्यारा है, तो किसी को श्याम प्यारा है, किसी को शिव प्यारा है तो किसी को गणेश प्यारा है। किसी को हनुमान प्यारा है तो किसी को देवी प्यारी है। सभी अपने–अपने प्रीतम को याद करते हैं। जब सभी लोग किसी न किसी को याद करते है तो श्री गुरु महाराज जी भी किसी को तो याद करते ही होंगे?'' जब आप लोग राम–राम जपते हो तो क्या मैं तुम्हें कृष्ण को जपवाऊँ? क्या तुम्हारे ऊपर दबाव डालूं कि ये छोड़ दो – यह कर लो? किसी चीज का दबाव डालूं या नहीं? मैं तुम्हारे कहने पर चलूं या तुम मेरे कहने पर चलो? तो क्या किया जाये? इन सभी बातों को अपने जीवन में सीखने की जरूरत है। श्री गुरु महाराज जी कह रहे हैं – दीपावली मनायी जा रही है। यह दुबारा आ गयी हमारे जीवन में, हो सकता है अगली भी आ जाये, यह तो चक्कर चलता ही रहता है। श्रीराम जी भी आये, श्रीकृष्ण जी भी आये, न जाने कितनी बार आये। सुना जाता है – सत्युग, त्रेता युग, द्वापर युग में देवी–देवता घूमते रहते थे यहां चले जाते थे, वहां चले जाते थे। ऐसा सभी शास्त्र पुराण बतलाते हैं। पर कलियुग में उनका कुछ अता–पता नहीं कि वे कहां चले गये? कहीं पर भी दिखलायी ही नहीं देते।

द्वापर युग के अन्त में महाभारत काल में जब वनवास के समय द्रौपदी का अपहरण करके ले जाते हुए जयद्रथ को अर्जुन पकड़ लेता है तब वह उसके बाल काटकर गंजा कर देता है और उसके सिर पर चोटी रख देता है। अपने अपमान व प्रतिशोध की आग में जलकर जयद्रथ अपनी ही शक्ति को अमर करने के लिये भगवान से वरदान मांगने की अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये शिव की पूजा करने बैठ जाता है और फिर शिव प्रगट हो जाते हैं उसके सामने। और कहां तो त्रेतायुग में रावण ने अपने कितने सिर काट-काटकर भगवान के चरणों में अर्पित कर दिये थे, तब कहीं जाकर भगवान ने दर्शन दिये थे उसे। और अब कलियुग में उन सभी देवी-देवताओं का कुछ अता-पता नहीं कि कहां पर चले गये हैं? क्या हम सभी लोग इस कलियुग में रावण बन गये हैं? या हम सभी लोग कौरव बन गये हैं? जो डर के मारे सभी देवता लोग भाग खड़े हुए हैं तीनों युगों में वे लोग घूमते रहते थे, उन लोगों ने देखा भी उनको जो उस समय थे। तो श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि यदि तुम्हें अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करना है तो अपने कानों को जगाओ। अपनी आंखों को जगाओ। रसना को जगाओ। मन को जगाओ। इन सभी बातों का क्या अर्थ होता है? हमारे कान हमेशा जागते तो रहते हैं। किसी ने दो शब्द बोल दिये साराह के, तो जल्दी से ही कान उस तरफ चला जाता है सुनने के

लिए कि यह हमारे लिये क्या बोल रहा है? शब्द साराह के हों या निन्दा के, कान हमेशा जागते ही रहते हैं।

इन्द्रियों के ये अंग हमेशा जागते ही रहते हैं, सावधान रहते हैं। श्री गुरु महाराज जी कहते हैं-तो क्या यही जागना है या कोई और है और यदि कुछ और है तो फिर वह क्या है? हम भी प्रयास करेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी।

हम हर बात को परायी ही लेकर बैठते हैं। पराये पांव क्या होते हैं? पराये पांव का अर्थ होता है बैसाखी। दो लकड़ियां, जिसके सहारे चलना होता है। जब पांव टूट जाता है तो चलने के लिए उनका ही सहारा लेना पड़ता है।

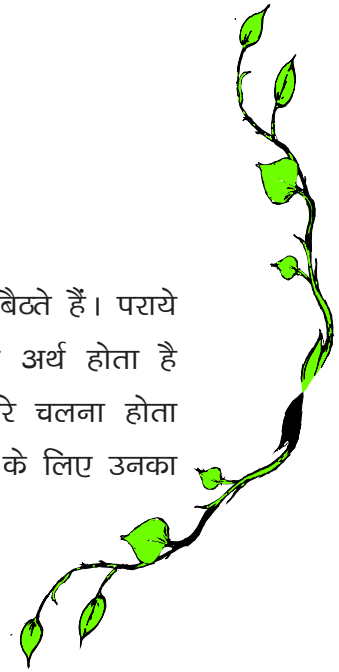

प्रवचन - 2

गुरु भक्ति से ही ज्ञान की प्राप्ति

सत्गुरु बुद्धि के नैन में, डारे अंजन ज्ञान।
कह टेऊँ तम भ्रम हर, दिखलावे भगवान।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज वे अपने अमृतमयी प्रवचन में गुरु के विषय में बतलाते हैं कि गुरु क्या करता है व क्या नहीं करता है ? श्री गुरु महाराज जी भी परम्परा से वही बतलाने का प्रयास कर रहे हैं जिसे इस विषय में हमारे पुराने इतिहास में बतलाया गया है। जीवन में परम्परा का निर्वाह क्यों किया जाता है ? इस विषय में श्री गुरु महाराज जी बतलाते हैं

जब परम्परा का निर्वाह किया जाता है तो ईश्वरीय शक्ति के साथ स्वतः ही सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। विकृति हमेशा प्रकृति के पांच मूल तत्त्वों में ही होती है। जब क्रिया परम्परानुसार होती है तो प्रकृति के ये अंश कर्ता के अधीन हो जाते हैं। पर उस पर चलना बहुत ही कठिन होता है। जो प्रयास करता है सारा जगत उसका साथ छोड़ देता है। जो जगत की परवाह करता है, वह बीच में ही रह जाता है। जो जगदीश के सम्बन्ध को चाहता है, अपने विश्वास पर स्थिर, अटल रहता है वह प्रेम प्रकाशी बन जाता है, श्री गुरु महाराज जी भी इस बात को तत्त्व से जानते थे और वही उन्होंने अपने जीवन में अपने शिष्यों से करने को कहा। गुरु वशिष्ठ व श्रीराम के संवाद में वशिष्ठ जी अपने शिष्य श्रीराम से कहते हैं – हे राम! संसार है ही नहीं। जब वह है ही नहीं तो उसके विषय में मैं तुम्हें क्या बतलाऊं? कब, क्यों, कैसा? उसके बारे में कुछ कहना ही नहीं बनता।

अनेक प्रश्न किसी वस्तु के आधार पर ही मन में उठते हैं, पर जब कोई वस्तु ही नहीं, कोई पदार्थ ही नहीं, तो मन में उठने वाले सभी प्रश्न बेकार हो जाते हैं। जब पदार्थ ही नहीं तो किसी भी तरह का प्रश्न ही नहीं। फिर किसी भी तरह का संशय, भ्रम व झगड़ा भी नहीं। पर ऐसा कब होता है? जब कोई भी इन्सान स्वयं को ही समझाने का प्रयास करता है तब ही कहीं जाकर ऐसा होता है। भगवान श्रीराम ने भी अपने गुरु के कहने पर स्वयं को ही समझाने का प्रयास किया तो पाया कि वास्तव में संसार है

ही नहीं और कहने लगे – मुझे तो पहले अपने गुरु की बात समझ में ही नहीं आती थी कि संसार है ही नहीं – जबकि मुझे तो दिखलाई पड़ता था कि संसार है तो फिर मैं उनकी बात को कैसे मानूं? पर अब भगवान श्रीराम को भी प्रतीत होने लगा कि संसार है ही नहीं । पर ऐसा कब लगने लगा? जब भगवान श्रीराम अपने ही मन को समझाने लगे। अपने गुरु के द्वारा बतलायी गई सभी बातों का मनन करने लगे तब ही कहीं जाकर उन्हें अपने गुरु के द्वारा बतलाई गई सभी बातें सही प्रतीत होने लगी और उनका जो भ्रम था संसार के विषय में वह समाप्त हो गया।

श्री गुरु महाराज जी भी अपने ही मन को समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि हमारा भ्रम भी तभी दूर होगा जब हमें भी भगवान श्रीराम की तरह गुरु का ज्ञान प्राप्त होगा।

अपने धर्म में रहने से ही तत्त्व की प्राप्ति संभव

कहते हैं – आज नया वर्ष प्रारम्भ हो गया। वर्ष 1998 समाप्त हो गया और आज से नया वर्ष 1999 शुरू हो गया। सही बात है या गलत बात है। सही बात है। बस यही तो भूल है हमारी। वर्ष 1999 हमारा है या अंग्रेजों का है। यह वर्ष तो अंग्रेजों का है तो फिर हम लोग इसे क्यों मनाते हैं? इसका मतलब हम लोग ईसाई हैं। यदि ईसाई हैं तो फिर हम लोगों ने आजादी की लड़ाई में उनसे इतना लड़ झगड़ कर उन्हें इस देश से बाहर क्यों भगाया? जो कुछ भी हमें दिखलाई पड़ रहा है या जो कुछ भी हम लोग मना

रहे हैं, हमें उसकी गहराई में जाना पड़ेगा। नया वर्ष हमारा या अंग्रेजों का? अंग्रेजों का। फिर उसे मना हम लोग रहे हैं। इसका अर्थ क्या हुआ? हम लोग गुलाम रहे हैं सदियों से । पहले मुसलमानों के रहे, और अब अंग्रेजों के रह रहे हैं। तभी तो कहते हैं कि नया वर्ष हमारा है। तो क्या गुलाम भी कभी बादशाह होता है? रंक भी कभी राजा होता है क्या?

मंथरा कहती है कैकयी से –

कोउ नृप होउ हमहि का हानी।
चेरि छाडि अब होब कि रानी।।

रानी जी मुझे क्या मिलेगा? राजा चाहे राम बने तो भी मैं दासी ही बनी रहूंगी, और राजा चाहे भरत बने तो भी मैं दासी ही बनी रहूंगी। मेरी स्थिति में तो कोई फर्क पड़ने वाला नहीं। मुझे क्या फायदा होने वाला है जो मैं आपको भड़काऊंगी। मैं तो दोनों ही स्थितियों में नौकरानी ही बनी रहूंगी। मंथरा के द्वारा बोले जाने वाले शब्द किस तरफ इशारा करते हैं? क्या सिद्ध होता है उसके द्वारा बोले जाने वाले इन शब्दों से? कोई व्यक्ति यदि करोड़पति हो तो क्या उसका नौकर सेठ कहलायेगा? अब हम जो मना रहे हैं यह नव वर्ष तो क्या ये गुलामी का प्रतीक नहीं है? पहले हम मुसलमानों के गुलाम रहे, फिर अंग्रेजों के गुलाम, अब हम गद्दारों के गुलाम बनते जा रहे हैं। नव वर्ष किसका? अपना या पराया। हमारा या अंग्रेजों का? जाओ तुम लन्दन में और देखो कि वहां के निवासी दीपावली मनाते हैं या नहीं? नहीं। हमारे जो भारतीय लोग हैं उन्हें भी वहां की सरकार कहती

है अपना त्यौहार दीपावली, दशहरा या होली जो भी हो उसे समुद्र तट के पास जाकर मनाओ, क्योंकि पटाखों से शहर में आग लग सकती है। वहां अपने ही घरों पर दीपावली के पर्व पर दीये जलते नहीं और यहां पर हम घर घर में दीप जलाते हैं नकल तो हम करते हैं पर उसके साथ अकल भी होनी चाहिये।

हरिद्वार में अप्रेल 1998 में महाकुम्भ पर्व हुआ था, तो लोगों ने कहा कि यह सदी का अन्तिम महाकुम्भ है। अब यह कौनसी अन्तिम सदी है? अंग्रेजों की सदी या हमारी सदी? हमारी सदी मे तो अभी तक 44 वर्ष और बाकी हैं। तो फिर यह कैसे कहा गया कि यह सदी का अन्तिम महाकुम्भ है? जब हमें उनकी ही सदी को मनाना है तो फिर हमें क्या जरूरत आ पड़ी थी उन अंग्रेज लोगों को इस देश से बाहर निकालने की, जिसकी वजह से अब हमें बरबाद होना पड़ रहा है।

हमारा वर्ष कब शुरू होता है? चैत्र में और हम कहते हैं – नये वर्ष की मुबारक हो। तो क्या हम मुसलमान हैं? इसका अर्थ क्या हुआ? हमारे पास अपनी भाषा ही नहीं है। यदि है तो फिर हमें अपनी ही भाषा में कहना चाहिए कि नये वर्ष की बधाई हो। हमें बधाई देनी ही है तो अपनी ही भाषा में देनी चाहिये। ''हम हर बात परायी ही लेकर बैठते हैं। पराये पांव क्या होते हैं? पराये पांव का अर्थ होता है बैसाखी। दो लकड़ियां जिसके सहारे चलना होता है। जब पांव टूट जाता है तो चलने के लिए उनका ही सहारा लेना पड़ता

है।'' तो फिर हमें क्या सीखना चाहिये? ये जो नया वर्ष आया है हमारे लिये क्या पैगाम लाया है? सम्मान तो हमें सभी धर्मों का करना चाहिये पर अनुष्ठान अपने ही धर्म का, श्री गुरु महाराज जी कहते हैं जीवन में तब ही तत्त्व की प्राप्ति संभव है।

गुरु के आधार से ही सही मार्ग की प्राप्ति

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि गुरु क्या करता है? वह हमारी आंखों में सुरमा डालता है ताकि अज्ञान रूपी अन्धेरा हमेशा के लिए समाप्त हो जाए, पर कौनसी आंखों में? अन्दर (भीतर) की आंखें जो बाहर से दिखलायी ही नहीं पड़ती। जब ऐसा होता है तो अज्ञान का हमेशा के लिए नाश हो जाता है। कहा जाता है – कई वर्ष हो गये हमें गुरु धारण किये हुए पर अभी तक अज्ञान का नाश हुआ नहीं । तो फिर कब होगा? जब हम इतिहास पढ़ेंगे, शास्त्र पढ़ेंगे, श्री रामायण, श्री महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रन्थ। एक एक बात सोच समझकर करेंगे, हर बात की गहराई में जाकर ही सोचेंगे, तब ही कहीं जाकर हमें सही अर्थ में सही रास्ता मिल पायेगा और हमारे अज्ञान का नाश हो जायेगा।

यहां पर फूल पड़ा तो है पर क्यों पड़ा है? इन छोटी छोटी बातों को भी हमें सोचना पडेगा, तब ही कहीं जाकर तत्त्व तक पहुंचना संभव हो पायेगा वरना नहीं। मान लो अभी तुम्हारी झोली में ऊपर कहीं से कोई लम्बा चौड़ा काला बिच्छू आकर गिरता है तो क्या हम यह सोचेंगे कि बिच्छू आया कहां से? इतना ऊपर यह चढ़ा कैसे, या उसे छोड़कर भागेंगे?

यदि उसे छोड़कर भागेंगे नहीं और यही सोचते रहेंगे कि वह कहां से आया, कैसे आया, कैसे ऊपर चढ़ा? तो वह अपना काम (काटने का) कर जायेगा। तो उसके बारे में सोचना छोड़कर भागना पड़ेगा। हमारे सिन्ध में गांव की औरतें अपने घरों के बाहर गाय, भैंस के गोबर के छेने बनाकर घर की दीवारों पर लगा देती थी ताकि सूख जाये। पर जब अंग्रेज लोग आते घूमने, व गांव वालों की इस प्रक्रिया को देखते तो आश्चर्य में पड़ जाते थे और कहते थे यह सब गायों के द्वारा दीवारों पर कैसे संभव है। हलवाई मिर्च के पकौड़े बनाते थे तो वे कहते थे – इस बेसन के अन्दर मिर्च गया कैसे? हमें भी सोचना पड़ेगा। कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन्हें सोचना पड़ता है व कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें सोचने से पहले ही छोड़कर भागना पड़ता है। ये सब बातें भी छोड़कर भागने वाली ही हैं। यानि किन्हीं बातों को तो सोचना चाहिये व किन्हीं बातों को सोचे बिना ही छोड़कर भाग जाना चाहिये। जैसे ऊपर से बिच्छू गिरे तो पहले उससे बचाव यानि तुरन्त भागना, फिर बाद में सोचना कि यह कब आया, कहां से आया, कैसे आया? आदि। तो यह सब ज्ञान हमें कैसे प्राप्त होगा। जब हम गुरु का आधार लेकर चलेंगे व उसके बाद ही आगे बढ़ेंगे। तब ही कहीं जाकर हमें सही मार्ग मिल सकेगा। प्रयास करेंगे।

ॐ

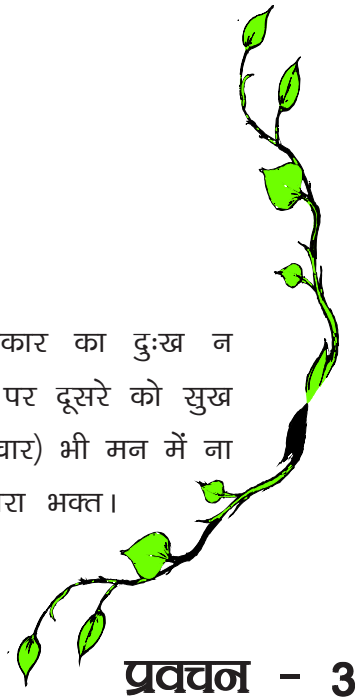

किसी को भी किसी भी प्रकार का दुःख न पहुंचाना, उसे कहते हैं अहिंसा। पर दूसरे को सुख पहुंचाऊं, इस तरह का फुरना (विचार) भी मन में ना उठे, भगवान कहते हैं वही है मेरा भक्त।

प्रवचन - 3

परम शान्ति की अनुभूति, प्रकृति से उत्पन्न गुणों से सर्वथा भिन्न

सत्गुरु बुद्धि के नैन में, डारे अंजन ज्ञान।
कह टेऊँ तम भ्रम हर, दिखलावे भगवान।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज, वे अपने जीवन में अपनी अमृत रूपी वाणी में बतलाते हैं कि जीवन में शान्ति कैसे मिले? जब तक शारीरिक, मानसिक रोग विद्यमान हैं, तब तक जीवन में परम शान्ति को प्राप्त करना संभव नहीं । अपने ही विचारों को श्री गुरु महाराज जी पुराने जमाने में ले जाने का प्रयास कर रहे हैं, ताकि उन्हें भी अर्जुन की तरह भगवान के दर्शन हो सकें। अर्जुन को उनके गुरु श्रीकृष्ण भगवान ने ''दिव्य–चक्षु'' देकर अपने विश्व रूप के दर्शन करवाये थे। श्री गुरु महाराज

जी कहते हैं – हमें भी जब तक अर्जुन की तरह ज्ञान रूपी आंखें नहीं मिलतीं, तब तक भगवान के दर्शन करना असंभव है। तो फिर हमें ये ज्ञान रूपी आंखें मिलेंगी कैसे? जब तक हमारे मन में उठने वाली सभी इच्छाएं समाप्त नहीं होतीं, किसी भी प्रकार के फुरने (संकल्प–विकल्प) मन में उठने से बन्द होते नहीं, तब तक वह परम आनन्द को प्राप्त होता नहीं। तामस, राजस व सात्विक, ये प्रकृति के गुण कहे गये हैं। हालांकि तामस के गुण से भी आनन्द की प्राप्ति होती है, लेकिन वह आनन्द किसी को बहुत बुरे तरीके से परेशान करके भी प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार रजोगुण वाला व्यक्ति भी आनन्द को प्राप्त होता है व सतो गुण वाला भी। लेकिन जीवन की परम शान्ति की अनुभूति के लिए जो आनन्द कहा गया है, वह आनन्द इन प्रकृति से उत्पन्न गुणों से सर्वथा भिन्न है।

शास्त्र कहते हैं – उसकी तुलना तो की ही नहीं जा सकती। यदि उसे प्राप्त करना है तो जगत की सम्पूर्ण इच्छाओं को त्यागना पड़ेगा। मन में उठने वाले विचार, संकल्प–विकल्प, ये सभी छोड़ने पडेंगे, तब ही कहीं जाकर उस परम शान्ति को प्राप्त किया जा सकता है। महर्षि पंतजलि इतिहास के महान दार्शनिक व भाषाकार हुए हैं। उन्होंने अपने जीवन में योग सूत्र नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसे विश्व के सभी सम्प्रदाय के लोग मानते हैं। उन्होंने अपनी रचना के माध्यम से बतलाया कि जब तक व्यक्ति यम की साधना में, जो पहला साधन है अहिंसा, उसका पालन नहीं करता, तब तक लक्ष्य तक पहुंचना असम्भव है। अहिंसा का अर्थ है – किसी भी प्राणी–जीव की मन से, कर्म से और वचन से, किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होती, उसे

अहिंसा कहते हैं। दूसरे रूप में यदि कहा जाये कि सभी को सुख पहुंचाना ही अहिंसा है। अब सुख देने से मिलता है या लेने से ? दूसरे व्यक्ति को दस रुपये दिये जायें तो वह खुश होगा कि नहीं? और यदि किसी से दस रुपये लिये जायें तब? यदि मैं किसी को दान दूं तो वह खुश होगा कि नहीं? ''किसी को भी किसी भी प्रकार का दुःख ना पहुंचाना, उसे कहते हैं अहिंसा! पर दूसरे को सुख पहुंचाऊं, इस तरह का फुरना (विचार) भी मन में ना उठे, भगवान कहते हैं वही है मेरा भक्त।'' जब तक मन में किसी भी तरह के संकल्प उठते हैं, तब तक वह योगी नहीं बन सकता और योगी बने बिना उस परम तत्त्व ''शान्ति'' को प्राप्त करना असम्भव है।

अब हम अपने जीवन में करें तो क्या करें व क्या नहीं करें? एक जगह पर तो हमारे मन में अहिंसा के विचार उठते हैं व दूसरी तरफ हिंसा के, किसी भी प्रकार से पैसा कमा कर इकट्ठा किया जाये। दूसरी तरफ दूसरों को सुख पहुंचाने का संकल्प और उसके लिए लोग गलत तरीकों से पैसा भी कमाते हैं। अब यह एक तरह से हिंसा हुई। (गलत तरीके से पैसा कमाना, दूसरों को दुःख देकर) व दूसरी तरफ दूसरों को सुख पहुंचाने का मन में विचारों का उठना। अब यह सब अच्छा है या बुरा? सुना गया है – एक बार एक गांव वाला व्यक्ति शहर में सब्जी–फल वाले के पास चीकू (फल) खरीदने आया। सब्जी वाले ने कहा – चीकू नहीं है। पास में दूसरा सब्जी वाले का साथी उससे कहने लगा – गांव का व्यक्ति है भोला–भाला। यह जो पास में आलू पडे हैं ना, इसे ही चीकू कहकर दे दो, इसे यह क्या पता चलेगा कि यह सब आलू हैं या चीकू? और फिर उस सब्जी वाले ने गांव के उस गरीब आदमी को आलू ही दे दिये। घर पर जाकर

उसके दिल पर क्या बीती होगी? जब सच्चाई का पता चला होगा और उधर सब्जी वाले ने कमाये गये पैसों से दूसरे दिन मंदिर में भण्डारा करवा दिया।

तो यह एक तरफ से दान, दूसरों को सुख पहुंचाने की नीयत से व दूसरी तरफ हिंसा, गलत तरीकों से पैसा कमाना, दूसरों को दुःख देकर तो महर्षि पंतजलि का आदेश, कि जीवन में अहिंसा का पालन करो, यदि तुम्हें अपने जीवन में उद्देश्य की प्राप्ति करनी है। अब ये फुरने मन से कैसे निकलें? अहिंसा व हिंसा के, ये फुरने केवल हमारे मन में ही नहीं उठते, सभी लोगों के मन में उठते रहते हैं। जितना अधिक ज्ञान, उतने ही अधिक फुरने। तो श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि जीवन की परम शान्ति की अनुभूति के लिए व्यक्ति को प्रकृति से उत्पन्न गुणों से पार जाना होगा।

मन की स्थिरता से ही शांति सम्भव

अर्जुन से भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – अर्जुन! भगवान का घर कहां पर है? जहां से फिर कभी ना आना पड़े। पर वहां जाता कौन है? जो मरने से पहले मरे, वही भगवान के घर पर जाता है और वही वापस नहीं लौटता वहां से जो मरने से पहले मरता है, फिर वह कैसे मरेगा? जो मरने से पहले ही मर गया। यानि जब फुरने ही समाप्त हो जायें मन के, फिर चाहे जीवन में दुख हो या सुख हो, अच्छा हो या बुरा हो, किसी भी तरह के संकल्प–विकल्प मन में उठे ही ना –

पर यह सब कब सम्भव होगा? जब हमारा मन स्थिर होगा। श्री गुरु महाराज जी कहते हैं – ज्ञान का मार्ग

बहुत ही कठिन है, व्यक्ति की सम्पूर्ण इच्छाएं समाप्त हो जायें। दूसरे व्यक्ति को सुख देने की व दूसरे से सुख लेने की, तब ही कहीं वह जाकर इस मार्ग में आगे बढ़ सकता है। पर यह सब कैसे सम्भव होगा? जब हमारे मन में किसी भी प्रकार के फुरने उठने बन्द नहीं हो जाते । यम के भी पांच साधन बतलाये गये हैं – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह । जिस किसी ने भी इन पांच साधनों को साध लिया, तो श्री गुरु महाराज जी कहते हैं – वह परम शान्ति को प्राप्त कर लेगा।

कहते हैं कि चोरी नहीं करना ही धर्म है । पर चोरी करने के उपाय ढूंढे जाते हैं, या चोरी ना करने के उपाय ढूंढे जाते हैं? जरा सोचिये कि चोरी करने की योजना बनाई जाती है, या चोरी ना करने की योजना बनाई जाती है? चोरी ना करना धर्म तो है, पर इसकी प्रेरणा हमें मिले कैसे? चोरी करने से हमारी वृत्ति खण्डित होती है और खण्डित वृत्ति से उस अखण्ड तत्त्व को प्राप्त करना संभव नहीं है। यदि जाना है आगे, तो हमें अपने जीवन को चोरी रहित करना होगा। जो है बहुत कठिन – पर असम्भव नहीं ।

वेदों की घोषणा है – ''अभयंमित्रात्अभयंअमित्रात्'' जो मेरे मित्र हैं, पास के हैं, शुभ चिंतक हैं, उनसे मुझे बचाओ, और जो मुझसे दूर हैं, शत्रु हैं, उनसे भी मुझे बचाओ। इसका अर्थ है जीवन संतुलित होना चाहिये। तो जीवन में हमें क्या करना चाहिए व क्या नहीं, इन सभी बातों को बहुत सोच–समझकर, देखकर ही करना पड़ेगा। प्रयास करेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी।

ॐ

जिसके द्वारा लच्छेदार भाषा बोली जाती है, मन को खींचने वाले शब्द बोले जाते हैं, रिद्धी सिद्धी की साधना में जो पूर्ण व्यक्ति होता है, उसके पास लोगों की भारी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। पर जिस चीज के लिये हम दौड़ रहे हैं, वह चीज उसके पास से हमें नहीं मिलेगी।

प्रवचन - 4

अपने स्वरूप को जानना ही जीवन का वास्तविक लक्ष्य

सत् शब्द सुन श्रवण जागे, हौं मैं संसा दुर्मति भागे।
भागे भ्रम की भीत, हरि जप, जाग जिज्ञासू जीत हरि जप।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज, वे अपने आप को ही समझाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। वह कैसा? जागो और सावधान हो जाओ। उसके लिये फिर क्या किया जाये? भजन करो भगवान का। जिस काम के लिए, जिस लक्ष्य के लिये, जिस उद्देश्य के लिये तुम आये हो मनुष्य का जन्म लेकर इस संसार में, उसे प्राप्त करो। उसके लिये फिर क्या करना

होगा ? जो तुम्हें सत् शब्द मिल रहा है सुनने को, उसे तुम्हें अच्छी तरह से समझने का प्रयास भी करना पड़ेगा। लक्ष्य की प्राप्ति के लिये गुरु ने जो तुम्हें रास्ता बतलाया है, क्या तुम उस रास्ते पर चल रहे हो या तुम अपनी ही मर्जी के रास्ते पर चले रहे हो ? और यदि ऐसा है तो जीवन में उद्देश्य को प्राप्त करना असंभव है। गुरु से हमें क्या मांगना चाहिये, वो ही हमारे आचार्य हमें समझाने का प्रयास कर रहे हैं, और उसी परम्परा का हमें भी पालन करना चाहिये। गुरु के पास जाने से पहले हमें यह भी निर्धारित करना पड़ेगा कि हम उनके पास जा ही क्यों रहे हैं ? उद्देश्य यदि सांसारिक वस्तु, पदार्थ इत्यादि को मांगने का है, तो कभी कुछ नहीं मिलेगा। क्योंकि जिस गुरु से जगत के पदार्थ मांगे जा रहे हैं, उनसे तो उनका कभी कोई संबंध रहा ही नहीं है। तो फिर वह तुम्हें क्या देगा ? यदि जीवन में कुछ मिल भी गया, तो उससे परम शान्ति की प्राप्ति होगी नहीं । गुरु से तो अपने स्वरूप को जानने का मार्ग (साधन) ही पूछना चाहिए। जो जीवन का लक्ष्य भी है और शाश्वत सत्य भी, उद्देश्य यदि यही हो, तो गुरु के पास जाना चाहिए।

श्री गुरु पूजा एक बार फिर आ रही है हमारे जीवन में, पर वह क्या पैगाम लेकर आ रही है ?

सत्गुरु मुझको दान दे, प्रेम भक्ति विश्वास।
कह टेऊँ नित सुमति दे, संतन माहिं निवास।।

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं –

''श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः''

अर्जुन! जिसमें श्रद्धा होती है, उसे ही ज्ञान की प्राप्ति

होती है और किसी को नहीं होती। तो ये शब्द, भगवान श्रीकृष्ण को अर्जुन से क्यों कहने पड़े ? जबकि अर्जुन तो भगवान का अनन्य भक्त था। जब हम उनका इतिहास पढ़ेंगे तो पायेंगे कि अर्जुन की भगवान श्रीकृष्ण के प्रति कितनी भक्ति, कितना प्रेम था। उसके बावजूद भी भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, कि जिसमें श्रद्धा होती है वही ज्ञान को प्राप्त करता है । पर ऐसा भगवान श्रीकृष्ण को क्यों कहना पड़ा ? जब महाभारत युद्ध की समाप्ति हुई, तो भगवान श्रीकृष्ण सबसे मिलकर वापस द्वारिका जाने को तैयार हुए, और फिर पूछने लगे पाण्डवों से, कि अब तुम्हें और क्या चाहिये ? राज–पाट जो युद्ध से पूर्व तुमसे छीन लिया गया था, अब वह वापस आपके पास आ गया है अब इसके बाद आप लोगों को और क्या चाहिये ? सो बतलाइये। सबने अपनी–अपनी मांग रखी प्रभु के सामने, पर अर्जुन ने कुछ और कहा, उसने कहा – ''भगवान आपने युद्ध के मैदान में मुझे जो गीता का ज्ञान दिया था, वह ज्ञान अब मुझसे भूल गया है। कृपा करके वह ज्ञान मुझे दोबारा दीजिये।'' इस पर भगवान श्रीकृष्ण ने क्या कहा अपने शिष्य अर्जुन से ? उन्होंने कहा – ''अर्जुन! तेरे में श्रद्धा ही नहीं है।'' यदि ऐसा ना होता ना, तो जो मैंने तुम्हें गीता का ज्ञान दिया था, वह तुमसे भूलता ही नहीं। ''श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः'' श्रद्धावान को ज्ञान की प्राप्ति तो होती है, पर हमें क्या लेना चाहिये श्री गुरु महाराज जी से ? प्रेम, भक्ति, विश्वास। इसका स्वरूप कैसा होता है ? यह बतलाया गया है ना, कि जहां पर प्रेम होता है, वहां पर लोग इकठ्ठे होते हैं कि नहीं ? प्रेम होता है व्यक्ति से। यह बहुत अच्छा बोलता है, मीठा बोलता है, व्यवहार बहुत अच्छा है इस व्यक्ति का। बार–बार

जाया जाये ऐसे व्यक्ति के पास और जब कोई व्यक्ति यदि तीखा बोले तो क्या हम जायेंगे उसके पास? नहीं जायेंगे। और कहेंगे–''ऐसे व्यक्ति के पास तो प्रेम हो ही नहीं सकता।'' ऐसे व्यक्ति के प्रति हम कौनसे शब्द इस्तेमाल करेंगे कि यह व्यक्ति तो बहुत रूखा है। सख्त है और जो व्यक्ति मीठा बोलता है, अच्छा बोलता है, तो कहते हैं कि यह अच्छा व्यक्ति है।

प्रेम रस चाख्या नाहि, अमृत पीया तो क्या हुआ।

जहां पर रस होता है वहां पर कौन इकट्ठे होते हैं? आम का रस, मिठाई का रस, जलेबी का रस। जहां पर भी इस प्रकार का रस होता है, वहां पर कौन आते हैं? मक्खियां, मकोड़े, और जहां पर व्यक्ति की वाणी (शब्द) रूपी रस होता है वहां पर कौन इकट्ठे होते हैं, कि अमुक्क व्यक्ति मीठा बोलता है, अच्छा बोलता है। मिठाई रूपी रस पर तो मक्खियां, मकोड़े व वाणी (शब्द) रूपी रस पर व्यक्तियों का समूह इकट्ठा हो जाता है।

आसणु मारे माल्हा फेरे, सिद्धी हलाए माण्हूं मेड़े भेख भले को करे अपार, ज्ञान बिना थिये मूर न मुक्ती, जतन करे को लखें हजार।

''जिसके द्वारा लच्छेदार भाषा बोली जाती है, मन को खींचने वाले शब्द बोले जाते हैं, रिद्धी–सिद्धी की साधना में जो पूर्ण व्यक्ति होता है, उसके पास लोगों की भारी भीड़ इकट्ठी हो जाती है। पर जिस चीज के लिये हम दौड़ रहे हैं, वह चीज उसके पास से हमें नहीं मिलेगी।'' तो फिर हम क्या मांगे श्री गुरु महाराज जी से? प्रेम। पर ऐसा प्रेम जिसमें

कोई रस न हो।

परमात्मा साक्षात् रस का ही रूप है।

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध विषय कितने हैं? पांच। जो चौथा विषय है – रस उसमें कौनसा रस है? यह कोई नहीं जानता। इसलिये विषय चार ही कहे गये हैं। गन्ध में रस है, स्पर्श में रस है, रूप में रस है, शब्द में भी रस है। अब रस में कौनसा रस है? यह रहस्य की बात है। शब्द में रस न होता तो हम भगवान का भजन सुनते ही क्यों? फिल्मी गानों व श्रीहरि के भजनों में रस है, तभी तो हम सुनते हैं। यदि रस नहीं होता उनमें तो क्या हम सुनते? शब्द, स्पर्श, रूप व गन्ध में रस है। कहते हैं – ''परमात्मा साक्षात् रस का ही रूप है''। पर उस रस का मायना क्या है?

साधु चरित शुभ सरिस कपासू।
निरस विशद गुणमय फल जासू।।

वह रस कैसा है? कपास जैसा। कपास मायना? उसको कितना भी दबायेंगे तो क्या उसमें से रस निकलेगा और कहीं पर भी रखेंगे तो क्या कीड़े मकौड़े वहां पर इकट्ठे होंगे? नहीं होंगे। नीरस, विशुद्ध, सफेद, स्वच्छ व पारदर्शी कितने सारे गुण हैं, इस रस रहित वस्तु कपास में।

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
वन्दनीय जेहि जग जस पावा।।

महल अच्छा सुन्दर बनवायें तो आदमी उसमें क्या ढूंढेगा ? आराम की जगह उसमें ढूंढेगा। और कीड़ा–मकौड़ा उसमें क्या ढूंढेगा ? छिद्र सुराख ढूंढेगा। और इन्सान आदमी

में क्या ढूंढता है? गलतियां – भाई इस व्यक्ति की कोई गलती पकड़ में आ जाये। कीड़ा–मकौड़ा मकान में सुराख छिद्र ढूंढता है, ताकि छुप जाऊं । कपास को कितना सहना पड़ता है। अनेक प्रकार की मशीनों से गुजर कर वह कपड़े के रूप में हमें प्राप्त होती है। और फिर वह कपड़ा हमारे तन को ढ़कता है। उसमें किसी भी प्रकार का रस नहीं है, पर फिर भी वह अनेक गुणों से परिपूर्ण है।

आचार्य का आशीर्वाद मिले बिना काम बनने वाला नहीं।

श्री गुरु महाराज जी बतलाते हैं – हमें गुरु से क्या मांगना चाहिये? प्रेम, भक्ति और विश्वास। जब हम गुरु से ये चीजें मांगते हैं, तो हमें भी इन मांगी गई चीजों के बदले गुरु को भी तो कुछ देना ही चाहिये। दुकानदार से जब हम कोई चीज मांगते हैं तो मांगी गयी अर्थात् खरीदी गयी वस्तु के बदले में भी तो हमें उसे कुछ देना होता हैं। प्रेम, भक्ति और विश्वास के बदले में गुरु हमसे क्या मांगता है?

"मय्यर्पित मनो बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः"।

भगवान कहते हैं – जिस किसी ने भी मुझे अपना मन व बुद्धि दे दिया, वह मुझे प्रिय है। मन व बुद्धि दे तो देवें गुरु को, पर वे रहते कहां पर हैं? ये क्या व्यक्ति की जेब में रहते हैं, तिजोरी में रखे हुए हैं अथवा बैंक के लॉकर्स में रखे हुए हैं, जहां से लाकर उसे गुरु को दे देवें? तुम्हारे पास अपना मन व बुद्धि है भी या नहीं? और यदि है, तो उसे कैसे निकाल कर गुरु को अर्पित करेंगे? जब यह दोनों ही चीजें गुरु को अर्पित की जाती हैं, तब ही कहीं जाकर हमें मिलता है गुरु का आशीर्वाद। अब हमें अपने जीवन में

आशीर्वाद किसका चाहिये? गुरु का चाहिये, सन्तों का चाहिये या परिवार वालों का? मां का आशीर्वाद चाहिये या सास का? मां का तो हमेशा आशीर्वाद रहता ही है अपनी बेटी के प्रति। क्या वह कभी बुरा सोचती है अपनी बेटी के लिए? सहज स्वाभाविक आशीर्वाद होता है हमेशा मां का अपनी बेटी के प्रति। पर जीवन में एक बहू को सास के आशीर्वाद की जरूरत होती है। सास के आशीर्वाद को पाना अपने जीवन में बहुत कठिन होता है। जब तक जीवन में उसका आशीर्वाद ना मिले ना, तो सफलता मिलना संभव नहीं, और जीवन में शिष्य को किसके आशीर्वाद की जरूरत होती है? गुरु का आशीर्वाद? गुरु के आशीर्वाद से काम बनने वाला नहीं, जब तक आचार्य का आशीर्वाद ना मिले। गुरु का आशीर्वाद तो सहज सरल–स्वाभाविक मिलता ही रहता है। गुरु कभी भी अपने शिष्य का अहित नहीं सोचता। हां यदि कभी कोई लोभी गुरु मिल जाये जीवन में, तो वह अलग बात है। वैसे गुरु कभी भी अपने शिष्य का बुरा नहीं चाहता। पर जीवन में आचार्य का आशीर्वाद मिले बिना काम बनने वाला नहीं।

सारी दृष्टि जड़ बन जाये। नोट कितने का है? पांच का, दस का, सौ का, हजार का। सारी बुद्धि जड़ बन जाये। जब तक ऐसा होगा नहीं ना, तो'' जीवन में कुछ प्राप्त किया जाये, यह सब असंभव है और वहां पर पहुंचना भी कठिन है, क्योंकि अपने अहंकार की वजह से मन व बुद्धि को अर्पित करना आसान नहीं होता। यह भण्डारा मैंने करवाया है। यह मंदिर मैंने बनवाया है। ये मूर्ति मैंने लगवाई है। इतना दान मैंने किया है। यह सब आता है हमारे मन में। हम ही छपवाते हैं अखबार में, हम ही लिखवाते हैं कि यहां सत्संग होगा, यहां प्रवचन होगा आदि। जब तक इस प्रकार के फुरने (विचार), चाहे वे पाप के हों या पुण्य के, मिटते नहीं, तब तक तत्त्व को प्राप्त करना संभव नहीं।

प्रवचन - 5

मन बुद्धि गुरु को अर्पित किये बिना काम बनने वाला नहीं

सत्गुरु मुझको दान दे, प्रेम भक्ति विश्वास।
कह टेऊँ नित सुमति दे, संतन माहिं निवास।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज, वे अपने ही गुरु से याचना कर रहे हैं। मांग रहे हैं। तो जो अपने हैं, उनका मायना क्या होता है? उनका अर्थ होता है जो अभिन्न हैं। अभिन्न यानि – ''जिन्हें जुदा नहीं किया जा सकता।''। माँ–बाप अपने हैं। भाई–बहिन अपने हैं। मित्र और परिवार के लोग भी अपने हैं। जिन्हें अपने से अलग नहीं किया जा सकता। पर ये लोग अपने होते हुए भी अपने से अलग हैं। भाई – बहिन हैं तो अपने

ही, पर अपने होते हुए भी अपने से अलग दिखलाई पड़ते हैं। लेकिन अभिन्न अंग कौनसे हैं? जो सबके पास हैं। वे तो अंग हैं परिवार के लोग। माँ–बाप, भाई–बहिन, मित्र–दोस्त और जो अपने अभिन्न अंग हैं मेरी आंख, मेरे कान, मेरे हाथ, मेरे पांव आदि। ये अभिन्न अंग हैं हमारे शरीर के, जिन्हें कभी अपने से जुदा नहीं किया जा सकता।

अब जो अपने हैं, उनसे मांगना बुरा नहीं। अपना लड़का यदि किसी दूसरे लोगों से मांगने लगे, तो फिर उसे हम क्या कहेंगे? भिखारी, और मां – बाप से मांगे तो फिर उसे हम भिखारी तो नहीं कहेंगे ना। गुरुओं से मांगना बुरा नहीं है। पर कौन से गुरु? जो यहां से प्रस्थान कर चुके हैं अर्थात् जो हमारे सामने हैं ही नहीं। इसलिए कहा गया हैः–

पहला साधन कर गुरु मूरत का, अन्तः करण मलीजे रे।
विषयां त्याग होय वैरागी, पावन पाठ पढीजे रे।
सोवत जागत नाम जपीजे, गुरु चरने चित्त दीजे रे।

अपने गुरुओं से मांगने में कोई बुराई नहीं है। पर मांगी गयी चीज, वस्तु व पैसों के बदले में गुरु भी वापस तुमसे कुछ मांगता है क्या? भिखारी यदि किसी से कुछ मांगता है तो उसे पैसे, फल, रोटी आदि मिल जाते हैं। पर उसके बदले में वह कुछ देता है क्या? नहीं देता है, और यदि मां–बाप से कुछ मांगा जाये तो क्या मां–बाप भी बदले में कुछ वापस लेते हैं क्या? मां–बाप तो हमेशा अपने बच्चों को देते हैं, पर बेटा भी वापस मां–बाप को कुछ देता है। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि वह भी उसी वस्तु को लौटाये जो उसे मिली थी। वापस लौटायी गयी चीज कुछ और भी हो सकती

है। लेन–देन तो होता है पर उसका रूप बदल जाता है। इस प्रकार बदले में सभी लेते हैं जैसे – दुकानदार से यदि कोई चीज, सामान आदि ले लो तो वह भी उसके बदले में हमसे कुछ लेगा, और फिर यह भी जरूरी नहीं है कि दुकानदार के द्वारा मांगी गयी वस्तु के बराबर की कीमत अदा करने पर भी वह तुम्हें वस्तु दे ही देगा। जैसे–मान लो मेरे पास दस हजार रूपये के बराबर की कीमत का एक हीरा है। अब मैं उसके बदले सीमेन्ट की दुकान से दस हजार रूपये का सीमेन्ट खरीदना चाहता हूं या उसके बराबर की कीमत का दुनियादारी का दूसरा कोई सामान कपड़ा, तेल, साबुन आदि लेना चाहता हूं, पर यह जरूरी नहीं है कि दुकानदार सामान के बराबर की कीमत चुकाने के पश्चात् भी वह वस्तु तुम्हें दे ही दे। क्योंकि उसकी दृष्टि में वस्तु की कीमत कुछ और ही है। इसी तरह हम भगवान से मांगते हैं तो प्रेम, भक्ति और विश्वास, पर इसके बदले में हमसे वह जो कुछ मांगता है, हमारी दृष्टि उस पर जाती ही नहीं है और फिर यह रहस्य की गुत्थी सुलझने के बजाय उलझती ही चली जाती है।

गुरु से ये सब चीजें मांगी जाती हैं, पर किसके लिए? भिखारी तो मांगता है अपने लिये, या उसके घर का कोई और सदस्य होता है, उसके लिये। पर शिष्य यह सब किसके लिये मांगता है? अपने लिये या गुरु के लिये, कि तुममें मेरा विश्वास है। जैसे आरती में आता है–''तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा'' यह जो गुरु पूर्णिमा का दिन है, वह भारी महत्व का दिन है। यह बड़ा अच्छा पैगाम (संदेश) लेकर आता है हमारे जीवन में, कि हम अपने जीवन में गुरु से क्या मांगें? प्रेम, भक्ति और विश्वास। पर हमारा गुरु में

विश्वास होता है कि नहीं ? गुरु में तो विश्वास सभी का होता है। फिर हम यह विश्वास किसके लिए मांग रहे हैं कि ''सुमति दे दो, प्रेम दे दो। पर ऐसा प्रेम जो सीमा में हो, मर्यादा में हो, और यदि प्रेम अपनी मर्यादा में न होगा, तो फिर क्या हो जाएगा ? जैसे अग्नि, जल, धरती आदि। यदि अपनी सीमा (मर्यादा) को पार कर जाएं तो क्या हो जाएगा ? इस प्रकार कई चीजें ऐसी होती हैं हमारे जीवन में, जो हमें काफी सोच विचार करने के पश्चात् मिलती हैं । ये दिवस साधारण नहीं होते। इनका भी अपना एक महत्त्व होता है। भगवान भी शिष्य से कुछ चाहता है। शिष्य यदि गुरु से कुछ चाहता है तो गुरु भी शिष्य से कुछ चाहता है, वह क्या चाहता है ?

मय्यर्पित मनो बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।

भगवान कहते हैं अपने शिष्य से – कि तुम मुझे अपना मन व बुद्धि दे दो। तो हम सब में से जो यहां पर बैठे हुए हैं, उन सबकी मन व बुद्धि कहां पर रखी हुई है ? तिजोरी में है ? अलमारी में है, या घर पर रखी हुई है ? कहां पर है ? जब तक हम हमारा मन व बुद्धि गुरु को अर्पित नहीं करेंगे, तब तक हमें कुछ मिलने वाला नहीं। कहते हैं हमारी मन व बुद्धि हमारे अन्दर ही है। पर उसे कैसे निकाल कर देवें ? गुरु को, यदि शिष्य से पिस्ते की बोरियां भर कर चाहिये तो वह उसे बाजार से लाकर दे देगा। पर अपनी मन व बुद्धि कैसे निकाल कर देगा वह अपने गुरु को ? पैसे यदि देने हों गुरु को, तो निकाल कर दे देगा। पर यह सब चाहिये नहीं गुरु को। अब जब तक गुरु के द्वारा मांगी गयी चीज

शिष्य के द्वारा गुरु को अर्पित नहीं की जाती, तब तक काम बनने वाला नहीं।

गुरु के द्वारा बतलाया गया मार्ग ही आचार्य की प्राप्ति का साधन

श्री गुरु महाराज जी कहते है कि यह मन व बुद्धि होती क्या है ? किसी सेठ ने यहां पर भण्डारा करवाया है, तो वह हमसे कहेगा कि सभी को कहलवादो कि अमुक भण्डारा मैंने करवाया है। यह धर्म का काम मैंने करवाया है और फिर वह अपने विचार – विचार यानि अपनी बुद्धि किसी दूसरे को अर्पित कर देवे, यह तो सर्वथा असंभव है और मन बुद्धि को अर्पित किये बिना काम बनने वाला नहीं। यह भगवान की घोषणा है। सुना जाता है एक बार राजा जनक के गुरु अष्टावक्र उनके राज दरबार में आये हुए थे। जनक जी की जिज्ञासा, 'आत्म ज्ञान' व 'ब्रह्म ज्ञान' क्या होता है ? जब वह पूरी हो गयी, तो वे अपने गुरु से कहने लगे, इसके बदले आपको गुरु दक्षिणा लेनी ही पड़ेगी। तब गुरु अष्टावक्र राजा जनक जी से कहने लगे, कि तुम मुझे गुरु दक्षिणा के रूप में तन, मन, धन व वाणी जो तुम्हारे पास है, वह तुम मुझे दे दो। तो राजा जनक ने कहा – गुरु ये चारों चीजें मैंने गुरु दक्षिणा के रूप में आपको अर्पित कर दी। राज दरबार से वापस जाते समय गुरु अष्टावक्र पैदल ही चलने लगे जंगल की ओर, तो राजा जनक जी सोचने लगे कि गुरु जी पैदल जा रहे हैं, क्यों न मैं उनके लिये घोड़ा मंगवालूं ? इस बीच गुरुजी आगे निकल गये जंगल की ओर। राजा जनक से ऐसा देखा न गया। तो फिर उसने अपने सेवक को बुलाया

और कहने लगे–घोड़ा लेकर आओ, फिर घोड़े को जंगल से रास्ते में निकाल कर अपने गुरु के पास आकर कहने लगे ''महाराज! आप इस तरह से परेशान होकर पैदल ही पैदल चल कर जा रहे हैं, मेरे राज दरबार से । यह सब मेरे से देखा नहीं गया। इसलिए मैं आपके लिये यह घोड़ा लेकर आया हूं। कृपा करके इसकी सवारी को स्वीकार कीजिये।'' इतना सुनते ही गुरु अष्टावक्र ने राजा जनक को थप्पड़ मारा और कहने लगे – चल झूंठे! तूने तो मुझे गुरु दक्षिणा के रूप में अपना तन, मन, धन व वाणी ये जो चार चीजें हैं तुम्हारे पास, वे सभी ही दे दी थी, फिर किसने तुम्हें आज्ञा दी, कि घोड़ा लेकर आओ मेरे सामने? मन–वाणी तो तुमने मुझे अर्पित कर दी थी। फिर घोड़ा लेकर के आने का विचार भी तुम्हारे मन में आया कैसे? जबकि तन, मन, धन व वाणी सभी अर्पित कर दिये थे। कहा भी गया है ना –

तन, मन, धन अर्दास करे मैं, मांगत नाम सनेही राम।
नाम तुम्हारा साबुन करसां, धोसां पाप सभेई राम।
आशवन्दी गुरु तो दर आई, तुम बिन ठैर न काई राम।।

जान बूझ जड़ हो रहे, बल तज निर्बल होय।
कहे कबीर तिस दास का, पला न पकड़े कोय।।

सारी दृष्टि जड़ बन जाये। नोट कितने का है ? पांच का, दस का, सौ का, हजार का। सारी बुद्धि जड़ बन जाये। जब तक ऐसा होगा नहीं ना, तो जीवन में कुछ प्राप्त किया जाये, यह सब असंभव है और वहां पर पहुंचना भी कठिन है, क्योंकि अपने अहंकार की वजह से मन व बुद्धि को अर्पित करना आसान नहीं होता। यह भण्डारा मैंने करवाया है। यह

मंदिर मैंने बनवाया है। ये मूर्ति मैंने लगवाई है। इतना दान मैंने किया है। यह सब आता है हमारे मन में। हम ही छपवाते हैं अखबार में, हम ही लिखवाते हैं कि यहां सत्संग होगा, यहां प्रवचन होगा आदि। जब तक इस प्रकार के फुरने (विचार) चाहे वे पाप के हों या पुण्य के मिटते नहीं तब तक तत्त्व को प्राप्त करना संभव नहीं। पर ये मन व बुद्धि हम दें किसको? गुरु को या पंथ के आचार्य को। पंथ के आचार्य को ही देनी है। बहुत गहरी बातें हैं। तत्त्व को पहचानना हो, तो हमें यह भी जानना होगा कि आत्मा क्या है, और परमात्मा क्या है? शास्त्र कहते हैं – जो बातें तुम्हें अच्छी नहीं लगतीं, वह दूसरों से मत करो। आत्मा मायने मैं। परमात्मा मायने दूसरे सभी। जो व्यवहार तुम्हें अपने लिये बुरा लगे, वह तुम दूसरों से मत करो। आत्मा व परमात्मा का परिचय छोटे रूप में भी है। जो मैं चाहूंगा, वह दूसरा भी चाहेगा। मुझे मलाई आईसक्रीम अच्छी लगती है, तो वह दूसरे को भी अच्छी लगेगी। यहां तक कि वह कुत्ते बिल्ली को भी दी जाये, तो वे भी रोटी छोड़कर पहले उसे खायेंगे। ये सब कठिन बातें है, पर सरल कब होंगी? जब हम गुरु के बतलाये मार्ग पर चलेंगे। रात– दिन उनके द्वारा बतलाये गये मंत्र का जाप करेंगे, मूर्ति की पूजा, साधना, उपासना करेंगे, तब ही हमें आचार्य का आशीर्वाद सहज ही प्राप्त हो जायेगा और जीवन में आने वाले सभी दुख व सुख के द्वन्द्वों को सहने की प्रेरणा मिल जायेगी। फिर जीवन में कितनी ही बड़ी विपत्ति क्यों न आ जाये, कभी घबरायेंगे नहीं – डरेंगे नहीं। प्रयास करेंगे, सफलता अवश्य मिलेगी।

ॐ

आत्म तत्त्व को भी केवल वही जानेगा, जो स्वयं खोजने निकलेगा। इसके लिये उसे इधर–उधर देखना नहीं। किसी से कुछ पूछना नहीं। यदि पूछ लिया ना, तो काम बिगड़ जायेगा। सहारा केवल गुरु का। आधार केवल गुरु का। दृष्टि मात्र एक गुरु पर। आदेश केवल गुरु का। भीतर में दृढ़ संकल्प हो उसे पाने का, तो सफलता अवश्यम्भावी है।

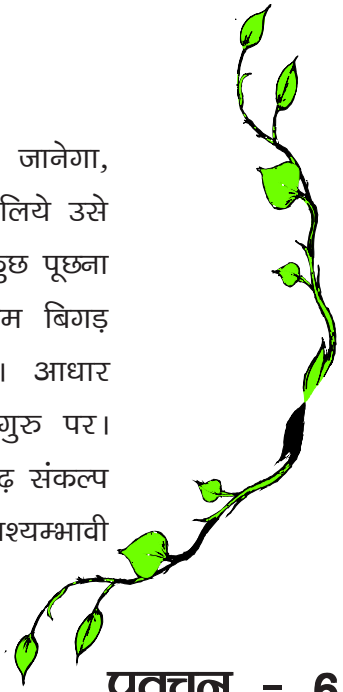

प्रवचन - 6

जड़–चेतन की गुत्थी, साधक के चिन्तन का विषय

टेऊँ काल टेई, विञाइ तूं न वेही,
पसिजि पाण पेही, दीओ बारि – देरे।
सुबुह जो सवेरे, गहिरी निण्ड घेरे,
अची आलसिनि खे कन्ध भरि केरे ।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज, वे अपने ही मन को समझाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। वह कैसा ? मैं कौन हूं ? मैं कहां से आया हूं ? संसार में मेरे आने का वास्तविक उद्देश्य क्या है ? मैं शरीर हूं या आत्मा ? आखिर मैं हूं कौन ? जिसके

लिए ये सब साधन किये जा रहे हैं। पांच तत्त्वों से बना यह शरीर मरने के बाद फिर इन्हीं पांच में मिल जाता है। तो फिर मुक्ति किससे? मैं शरीर नहीं, तो फिर मैं क्या हूं? किस चीज ने मुझे बांध रखा है? जीवन में जब तक हमें बांधने वाली चीज का ज्ञान नहीं होगा, तब तक हमारे लिए मुक्ति को जानना संभव नहीं होगा। पांच तत्त्वों से बना यह शरीर, आपस में एक दूसरे से मिलकर पच्चीस तत्त्वों का बन जाता है। जिसे हम चेतन का रूप समझते हैं वह भी वास्तव में जड़ ही है। इस तरह जड़, जड़ से चल रहा है और जड़, जड़ को ही चला रहा है। फिर चेतन क्या है? यह गुत्थी (रहस्य) जड़ चेतन की, आदि काल से ही जीव के चिन्तन का विषय बनी हुई है। श्री गुरु महाराज जी भी इसी विषय पर सोच रहे हैं, कि मैं शरीर नहीं तो फिर मैं क्या हूं?

ज्ञानी ध्यानी खोजत हारे, पार किसे नहीं पाया।
पार किसे नहीं पाया हरि ने, अजब तमाशा लाया।
अजब तमाशा लाया हरि ने .....।

ऋषि मुनियों ने भी अपने जीवन में इस तत्त्व को खोजने का प्रयास किया, तो पाया कि हम अपने जिस शरीर को देखते हैं वह स्थूल शरीर कहलाता है। जो कि प्रकृति के पांच मूल तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश से मिल कर बनता है। यह शरीर भी तीन स्वरूपों में होता है। स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर। हमारे शरीर की अवस्थाएं भी तीन होती हैं। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति। आत्मा के सर्वथा निकट का आवरण आनन्दमय कोष, जिसे हम चेतन का ही अंश समझते हैं। जबकि वह भी चेतन न होकर जड़ ही है।

शरीर निर्मित पांच कोषों अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष (बुद्धि) व आनन्दमय कोष से हमारी आत्मा ढ़की रहती है। अब उस आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए जब तक हम शरीर के इन पांच कोषों को अलग नहीं कर लेते, तब तक उस परम तत्त्व चेतन (आत्मा) की अनुभूति नहीं हो सकती है। हमारे शरीर में इन कोषों का निर्माण कैसे होता है? इस पर दौड़ लगाई हमारे ऋषियों ने, तो पाया कि हम जो खाते हैं अन्न, घी व पीते हैं पानी। अन्न का स्थूल स्वरूप बन जाता है मल, सूक्ष्म स्वरूप बन जाता है मांस व कारण स्वरूप बन जाता है मन और फिर हमारे इसी मन में सारा दिन फुरने (संकल्प–विकल्प के) उठते रहते हैं कि मैं यहां पर जाऊं, वहां पर जाऊं। सभी जगह पर यह मन दौड़ता रहता है। यह सब की शिकायत रहती है तो फिर हमारी भी शिकायत रहती है। अर्जुन ने भी कहा –

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

भगवान। मन चंचल है, यह एक जगह पर स्थिर रहता ही नहीं। अब ये मन अन्न से बनता है, तो फिर ये अन्न जड़ है या चेतन? दूसरी चीज हम खाते हैं घी (चिकने पदार्थ) मलाई, मक्खन, पिस्ते, बादाम, काजू आदि। उसके भी तीन रूप हो जाते हैं। हड्डियां, मज्जा व तीसरा रूप होता है प्राण। जो सारा दिन हम लेते रहते हैं और जन्म से मृत्यु पर्यन्त यह क्रिया चलती रहती है। जिनके शरीर से यह प्राण निकल जाते हैं, तो उनका तेज खत्म हो जाता है। तीसरा हम पीते हैं पानी (पेय पदार्थ), दूध, शर्बत, फलों का रस आदि।

इनके भी तीन रूप हो जाते हैं। लघुशंका, खून व तीसरा रूप बन जाता है वाणी, जो हम बोलते हैं । हमारे शरीर के स्वरूप को देखकर ही सारी दुनिया में मशीनों का अविष्कार हो गया। पंछी की प्रकृति को देखकर ही हवाई जहाज का निर्माण हो गया। अब बताइये इन सब में चेतन (आत्मा) कहां पर है? ये सब तो जड़ शक्तियां हैं। अब जड़ शक्ति को ही चेतन (आत्मा) कहा जाये या नहीं? अब यह सब खाने वाली चीजें बनी जड़ से हैं, तो फिर इनमें आत्मा कहां से आयी? जीवन में लड़ाई–झगड़े, रोना–धोना, ये सब कहां से आया? प्रकृति के पांच मूल तत्त्व वे भी टूटकर आपस में एक दूसरे से मिल गये हैं। तो वे भी जड़ ही हैं। फिर चेतन (आत्मा) किसे कहा जाये? कहते हैं – ''एको हि बहुधा वदन्ति''? सृष्टि से पूर्व परमात्मा में ''मैं एक ही अनेक रूपों में हो जाऊं'' ऐसा संकल्प हुआ। जैसे एक लड़की है। कोई कहता है यह मेरी बहिन है, कोई कहता है यह मेरी बेटी है, कोई कहता है यह मेरी पत्नी है, कोई कहता है यह मेरी मां है, कोई कहता है यह मेरी सास है, कोई कहता है यह मेरी बहू है। अब यह लड़की एक है या दो? है एक ही लड़की पर, वह अलग–अलग रूप में सबके साथ अलग–अलग रिश्तों से बंधी हुई है। किसकी वह बेटी है, किसकी वह पत्नी है, तो किसी की वह भाभी व बहू है। सबने अपना–अपना नाम रख दिया। इन सबका अर्थ क्या हुआ? परमात्मा भी एक ही है। उसने ही अपने आप को अनेक रूपों में कर रखा है। जीव साक्षात् उसी का ही स्वरूप है, पर उसने अपने आपकी सत्ता को उस परमात्मा से अलग मान कर रखा है, इसलिये उसे नित्य प्राप्त परमात्म तत्त्व का अनुभव ही नहीं होता।

विनाशी–अविनाशी को कैसे प्राप्त करे?

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि जब जड़ शक्ति व चेतन शक्ति दोनों एक ही हैं, उनमें आपस में कोई भेद नहीं, तो फिर यह क्यों कहा जाता है कि आत्मा को शरीर से अलग कर लो? जड़ चेतन की यह गुत्थी, एक पहेली (रहस्य) बनी हुई है। शरीर को नाशवान व उस परमात्म तत्व को नित्य व अविनाशी कहा गया है, तो फिर विनाशी के द्वारा उस अविनाशी तत्त्व को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? यह एक रहस्य की बात है।

कहता टेऊँ कहत न आवे,अद्भुत खेल खिलाया।
अद्भुत खेल खिलाया, हरि ने,अजब तमाशा लाया।।

चेतन किस तरह का व क्या? आत्मा क्या व कैसी? भगवान श्री कृष्ण कहते हैं–**''कच्चिदज्ञान सम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय''** अर्जुन! क्या तेरा अज्ञान रूपी मोह नष्ट हो गया? तो फिर अर्जुन कहता है–**''नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा''** भगवान! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति को प्राप्त कर लिया है। फिर कौनसी स्मृति को अर्जुन ने पा लिया था जिसकी वजह से उसे ये शब्द भगवान को कहने पड़े? जीव की स्मृति तो माया के प्रभाव से विस्मृति का अंग बन जाती है, तो फिर कौनसी स्मृति अर्जुन को प्राप्त हो गयी थी? ऋषि मुनियों ने भी अपने जीवन में इस तत्त्व को खोजने का प्रयास किया। अनादि स्मृति, जीव साक्षात् जिसका स्वरूप है। जिसको यदि जीवन में पा लिया तो फिर वह कभी विस्मृति का अंग नहीं बनती। ऐसा शास्त्रों में सुनने को मिलता है। ऋषि, मुनि, संत सभी खोजने चले इस तत्त्व

को, पर कुछ अता-पता नहीं। इसका अर्थ क्या हुआ? हम कुछ प्रयास करें ही नहीं उस तत्त्व को प्राप्त करने का। भगवान कहते हैं-अर्जुन! तू चाहे मेरा कहना मान या न मान, पर प्रकृति अपने आप तेरे में यह भाव उत्पन्न कर देगी और फिर तू अपने स्वरूप (आत्मा) को खोजने चल पड़ेगा।

जीव साक्षात् परमात्मा का ही अंश

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि जीव साक्षात् परमात्मा का ही अंश है। नित्य प्राप्त परमात्म तत्व के साथ ही जीव का नित्य योग है। मात्र दृष्टि डालते ही अपने निज स्वरूप का अनुभव होने लगता है। लेकिन जीव की दृष्टि हमेशा संसार की तरफ लगी रहती है। संसार के नाशवान, अनित्य व परिवर्तनशील पदार्थों की प्रियता उनके हृदय में इस प्रकार बैठी रहती है कि उनकी दृष्टि अपने (स्वयं) स्वरूप पर कभी जाती ही नहीं और फिर यदि कभी चली भी जाये तो फिर वह स्थिर रहती नहीं। संसार के पदार्थ व्यक्ति व परिस्थितियों के साथ संबंध तो जीव का माना हुआ है वास्तव में है ही नहीं। जैसे लहर अपने ही स्वरूप समुद्र को ढूंढती रहती है। सूत अपने ही स्वरूप कपड़े को ढूंढता रहता है। इसी प्रकार जीव भी अपने ही स्वरूप (ब्रह्म) को ढूंढता रहता है पर उन्हें कुछ मिलता नहीं। क्योंकि वे तो एक ही हैं। उनमें आपस में कोई भिन्नता नहीं। अपने ही निज स्वरूप से अलग सत्ता मानी हुई है, इसलिए भेद दिखलाई पड़ता है। फिर यह भेद मिटे कैसे? श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि तू अपने ही अन्दर घुस जा, तब ही यह भेद मिटेगा। पर घुसें कैसे अपने ही अन्दर? उसके लिए तुम्हें भी वही रास्ता अपनाना पड़ेगा जो हमारे ऋषियों ने अपनाया। तुम्हें भी

परम्परा से उसी रास्ते का अनुसरण करना पड़ेगा। पर तुम्हें यह रास्ता स्वयं ही अपनाना पड़ेगा। तुम्हारे स्थान पर किसी दूसरे को नहीं। यदि ऐसा किया ना, तो जीवन में कुछ भी मिलने वाला नहीं। मान लो किसी व्यक्ति को जाना हो यहां से बम्बई, तो उसके सगे संबंधी उसे स्टेशन पर बम्बई वाली गाड़ी में बैठाकर वापस अपने घरों पर चले जायेंगे। रास्ते में गाड़ी में बैठकर वह व्यक्ति जो - जो दृश्य देखेगा अलग - अलग शहरों के, उसके बारे में तो केवल वह स्वयं ही जानेगा। उसकी जगह पर वे लोग उसके सगे संबंधी जो उसे स्टेशन पर गाड़ी में बैठाकर वापस अपने घर पर चल दिये थे वे थोड़े ही जान पायेंगे? इस प्रकार ''आत्म तत्व'' को भी केवल वही जानेगा, जो स्वयं खोजने निकलेगा। इसके लिये उसे इधर-उधर देखना नहीं। किसी से कुछ पूछना नहीं। यदि पूछ लिया ना तो काम बिगड़ जायेगा। सहारा केवल गुरु का। आधार केवल गुरु का। दृष्टि मात्र एक गुरु पर । आदेश केवल गुरु का। भीतर में दृढ़ संकल्प हो उसे पाने का, तो सफलता अवश्यम्भावी है।

जड़-चेतन की गुत्थी एक रहस्य बनी हुई है'' अब जड़ जड़ को चला रहा है या जड़ चेतन को। या चेतन जड़ को चला रहा है, और यदि चेतन जड़ को चला रहा है तो फिर वह हमारे जीवन में कहाँ पर है? शरीर में, प्रकृति में, संसार में अथवा हमारे रोज के व्यवहार में। चेतन कहाँ पर है? यदि हमारे पास बुद्धि ही नहीं हो, तो क्या हम उसका पता लगा पायेंगे? और यदि बुद्धि है हमारे पास, तो वह भी तो जड़ ही है। तो फिर चेतन क्या है?

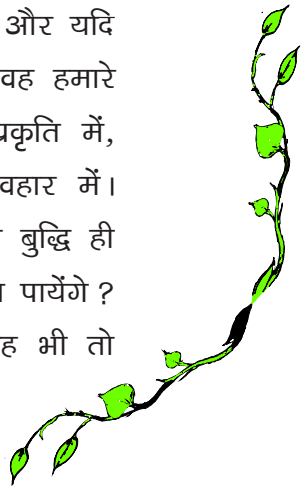

प्रवचन - 7

संन्यास का अर्थ है जागना

टेऊँ काल टेई, विञाइ तूं न वेही,
पसिजि पाण पेही, दीओ बारि - देरे।
सुबुह जो सवेरे, गहिरी निण्ड घेरे,
अची आलसिनि खे, कन्ध भरि केरे।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज, वे स्वयं को ही समझाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। वह कैसा ? संसार बन्धन से छुटकारा पाने का। क्या समझा रहे हैं ? घर-बार तुमने छोड़ दिया। धन्धा व्यवहार सब छोड़ दिया। अब तुम जंगल में आकर के बस

गये हो। फिर भी जीवन में शान्ति नहीं, ऐसा क्यों ? श्री गुरु महाराज जी स्वयं को ही समझाने का प्रयास कर रहे हैं। वे अपनी ही वृत्तियों को पुराने जमाने में ले गये तो पाया कि श्री शुकदेव जी के साथ भी ऐसा ही हुआ था। वे चले महाराज जनक जी के पास। आदर सत्कार के पश्चात् जनक जी पूछते हैं–श्री शुकदेव जी से, महाराज! कैसे पधारे ? तो वे बोले मेरे मन को शान्ति नहीं है। तो महाराज जनक जी कहते हैं–क्यों ? कारण ? हर बीमारी का, हर समस्या का कोई कारण होता है। कारण बिना कार्य होता नहीं, ऐसा सुना गया है। श्री गुरु महाराज जी बहुत गहराई में जाकर सोच रहे हैं कि ऐसा क्या कारण हो सकता है जिस वजह से श्री शुकदेव जी महाराज जैसे ऋषि, संत महात्मा के मन को शान्ति नहीं ? जीवन में किसी भी चीज की उन्हें आवश्यकता नहीं। न घर की, न बाल–बच्चों की, न खान–पान की। जंगल के फल आदि खा लेना, नदियों का पानी पी लेना, पेड़ के नीचे बैठ जाना व सो जाना। तो फिर जीवन में अशान्ति किस बात की ? अशान्ति तो तब होती है, जब जीवन में कोई सांसारिक व्यवहार किया जाए। कोई धर्मार्थ कार्य किया जाए। जिसके लिये पैसे जुटाने की आवश्यकता आ पड़े। मन्दिर बनवाना हो तो पैसे चाहिये, मूर्ति बनवानी हो तो पैसे चाहिये, मेला लगवाना हो तो पैसे चाहिये, यज्ञ–हवन आदि करवाना हो तो पैसे चाहिये। इसी प्रकार अनेक धर्म के कार्य होते हैं, जिनको सम्पन्न करवाने हेतु पैसों की आवश्यकता पड़ती है। राजा जनक जी कहते हैं–हे शुकदेव जी! आपके पास तो ऐसा कोई

धर्म का कार्य भी नहीं है, जिसके लिए पैसे जुटाने पड़े। फिर जीवन में अशान्ति क्यों ? श्रीमद्भागवत सुनाया गया था कि शुकदेव जी के द्वारा–राजा परिक्षित को ? कहां पर सुनाया गया था ? घर पर ? मंदिर में ? महल में ? नहीं। गंगा के किनारे पर सुनाया गया था, पेड़ के नीचे बैठकर। तो फिर श्री शुकदेव जी ने श्रीमद्भागवत की कथा का पाठ सुनाने के लिए कितने पैसे लिये थे राजा परिक्षित से ? कुछ भी नहीं लिये थे। पर क्यों नहीं लिये थे ? क्योंकि श्री शुकदेव जी को पैसों की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। पैसों की तो उनको तब आवश्यकता हो, जब उन्हें कोई सांसारिक व्यवहार का कार्य करना हो, कोई धर्मार्थ कार्य करना हो, और इस तरह का कोई कार्य करना श्री शुकदेव जी का कोई लक्ष्य नहीं था, तो फिर पैसे किस बात के ? फिर भी उनके जीवन में अशान्ति किस बात की ? श्री गुरु महाराज जी कहते हैं–शान्ति है कहां पर और वह कैसे मिलेगी ? श्री नारद जी गये सनकादि ऋषियों के पास। वस्तुस्थिति क्या है कुछ पता नहीं ? पर सुनी हुई बात आप लोगों को बतायी जा रही है। स्वागत–सत्कार के पश्चात् उनसे पूछा गया कि बतलाओ! कि कैसे आना हुआ ? तो कहने लगे कि मेरे मन में शान्ति नहीं। तो क्यों नहीं है शान्ति ? और फिर अशान्ति मिटाने के लिए व शान्ति के लिए क्या उपाय किये जायें ? जबकि मुझे तो चारों वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् व सभी तरह की विद्याएं कण्ठस्थ (याद) हैं। तो भी मेरा मन शान्त नहीं । मान लो हम में से कोई हरिद्वार गया हो, तो वह वहां पर जाकर ''हर

की पौड़ी'' पर जाकर खड़ा हो गया और वहां का सुन्दर दृश्य उसके मन पर अंकित हो गया। अब वो यहां पर है और सोचता है उसका मन अतीत काल में हरिद्वार के ''हरि की पौड़ी'' पर खड़ा है। यह सब कैसे हो गया ? इस तरह हमारा मन बन जाता है जो इधर से उधर भटकता रहता है और जीवन में अशान्ति बनी रहती है। यह हम लोगों की भी शिकायत है। नारदजी तो बहुत पहुंचे हुए व्यक्ति हैं। जब उनका ही मन अशान्त है, तो फिर उनके सामने तो हम लोग बहुत ही साधारण जीव हैं। वे तो जैसा चाहें वैसा ही अपना शरीर बना लेते हैं। जब चाहें तब ही वे अपने योग बल के आधार पर कहीं पर भी जा सकते हैं। जिस किसी से भी मिलना चाहें मिल सकते हैं। हर तरह की विद्या का उन्हें ज्ञान है। फिर भी उनका मन अशान्त क्यों ? उनके जीवन में अशान्ति कैसी ? श्री गुरु महाराज जी कहते हैं अपने ही गुरु से – कि मन शान्त नहीं। शान्ति जीवन में थी भी या नहीं और यदि थी तो फिर वह कहां पर चली गयी ? व क्यों गयी ? क्यों आती है हमारे जीवन में अशान्ति और फिर जब वह आ ही गयी तो फिर वह जायेगी कैसे ? इस पर कहा जाता है– जिस चीज के खोने से हमारे जीवन में अशान्ति आ गयी है वह चीज हमें मिल जाये तो फिर क्या चीज खो गयी है हमारी हमारे जीवन में ?

जबसे अपना आप भुलाया, तबसे तुमने बहु दुख पाया।
अब तक मूर्ख तुम नहिं जागे, भोग विषय में अहनिश लागे।
मोह लिया तुमको हरि माया।

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि तुम स्वयं अपने आप को ही भूल गये हो। तुमने अपना मन अनित्य, नाशवान व परिवर्तनशील सांसारिक पदार्थों, व्यक्तियों में ही लगा रखा है। इसलिए तुम्हारा मन हमेशा अशान्त रहता है। जीवन की परम शान्ति के लिये तुम्हें स्वयं अपने आप को ही पहचानना पड़ेगा। ''संन्यास का अर्थ है जागना'' भागना नहीं। जो संसार से भाग कर संन्यास लेता है, वह समाज के लिये अभिशाप होता है और जो संसार में जागकर संन्यास लेता है वह समाज की सम्पत्ति होता है। संन्यास का सही अर्थ है जागना और जागने का अर्थ होता है अपने – अपने कर्तव्यों की सही पहचान। श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि यही वह चीज है हमारी, जो खो गयी है।

जड़–चेतन की गुत्थी–एक रहस्य

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि तुम अपने आपको कैसे भूल गये ? जबकि तुम स्वयं तो साक्षात् परमात्मा के अंश हो। दृष्टि तुम्हारी अपने ही स्वरूप पर न जाकर शरीर पर चली गयी है कि मैं आत्मा नहीं शरीर हूं। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :–

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।

अर्जुन! जड़ व चेतन दोनों ही मेरी प्रकृतियां हैं। पर मैं नहीं। मैं शरीर नहीं, मैं मन नहीं, मैं बुद्धि नहीं, मैं अहंकार नहीं। फिर जब मैं मन भी नहीं, बुद्धि भी नहीं तो फिर मैं कौन हूं? फिर ये सब साधन किस चीज के लिए किये जा रहे हैं? गुरु के पास जाकर शान्ति को मांगा जाता है, पर वह मिलेगी कैसे? श्री गुरु महाराज जी कहते हैं – यह सारा संसार तीन गुणों से बंधा हुआ है। सतो, रजो व तमो गुण से। सतो गुण रजो गुण से कहीं अधिक खतरनाक होता है और रजो गुण तमो गुण से, अब ये तीनों गुण भी प्रकृति के ही अंश है और यह हमारा शरीर भी प्रकृति का ही अंश है, तो कहते हैं कि यह कैसे बना? भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं आठ प्रकार की मेरी जड़ प्रकृति है जिससे जीव का शरीर बनता है। अग्नि, वायु, आकाश, जल व पृथ्वी। यह बाह्य प्रकृति है, जो अन्य तीन हैं वो दिखलाई नहीं पड़ती। अब यह जो पंखा चल रहा है, इसका बाहरी हिस्सा तो हमें चलता हुआ दिखलायी पड़ता है, परन्तु जो इसके अंदर की मशीन है, जो इसे चला रही है, वह दिखलायी नहीं पड़ती और उसकी मशीन भी बिजली की शक्ति से ही चलती है और वह बनती है पानी से और पानी भी जड़ है। इस प्रकार जड़ जड़ को ही चला रहा है व जड़ जड़ से ही चल रहा है। तो फिर इसमें चेतन क्या है और कहां पर है? ''जड़–चेतन की गुत्थी रहस्य बनी हुई है।'' अब जड़ जड़ को चला रहा है या जड़ चेतन को? या चेतन जड़ को चला रहा है और यदि चेतन जड़ को चला रहा है, तो फिर वह हमारे जीवन में कहां पर

है? शरीर में, प्रकृति में, संसार में अथवा हमारे रोज के व्यवहार में? चेतन कहां पर है? यदि हमारे पास बुद्धि ही नहीं तो क्या हम उसका पता लगा पायेंगे? और फिर यदि बुद्धि है हमारे पास तो, वह भी तो जड़ ही है। तो फिर चेतन क्या है? हमारे मन, बुद्धि व अहंकार अन्तःकरण के विषय हैं। इसलिए उन्हें भी जड़ ही कहा गया है। तो फिर चेतन (आत्मा) क्या है?

ज्ञानी ध्यानी खोजत हारे, पार किसे नहीं पाया।
पार किसे नहीं पाया हरि ने, अजब तमाशा लाया।।

संत, महात्मा, ऋषि–मुनियों ने अपने जीवन में इस तत्त्व को खोजने का प्रयास किया। श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि जब तक हम भी अपने जीवन में जड़ व चेतन की ग्रन्थी के रहस्य का पता नहीं लगा लेते, तब तक जीवन में परम शान्ति की अनुभूति नहीं हो सकती ।

ब्रह्म ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं।

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि यदि तुम्हें अपने जीवन में प्राणों के रहते ही, जीवन के रहते ही, उस परम तत्त्व ''आत्म तत्त्व'' की प्राप्ति करनी है, तो फिर वह 'ब्रह्म ज्ञान' के बिना संभव नहीं। जब ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं, तो फिर वह ज्ञान है कहां पर? वेद शास्त्रों के अन्दर या बाहर और यदि वह ज्ञान वेद शास्त्रों के अन्दर है, तो फिर वह हमें खोजना पड़ेगा। मात्र वेदों के पढ़ने या दूसरों को

पढ़ाने से वह मिलने वाला नहीं। ''ज्ञान का क्षेत्र व्यापक होता है'' झाड़ू लगाने का ज्ञान, खाना पकाने का ज्ञान, गाड़ी चलाने का ज्ञान, तबला व बाजा बजाने का ज्ञान आदि। पर हमें तो जिस ज्ञान से परिचित होना है उसकी विद्या को प्राप्त करना पड़ेगा और हमारा लक्ष्य तो है ब्रह्म ज्ञान को सीखना। तो फिर वह ज्ञान हमें कहां से मिलेगा? कहते हैं वह ज्ञान तो वेद व शास्त्रों में छुपा हुआ है, पर वे तो सारे के सारे शास्त्र शब्दों से भरे हुए हैं। तो क्या शब्द हमारे में ज्ञान उत्पन्न करने में समर्थ हैं? शब्द का भी अपना एक संकेत होता है और जिन्हें इन संकेतों का ज्ञान होता है, शब्द उनमें ही ज्ञान उत्पन्न कर सकते हैं, सब में नहीं। शब्द का आधार क्या होता है? लकीर। लकीर का आधार क्या होता है? बिन्दू। बिन्दू से लकीर व लकीर से शब्द और उस शब्द का संकेत उसका ज्ञान होता है। डाक्टर भी बिन्दू व लकीरों के ज्ञान से शरीर में विद्यमान बीमारी का पता लगा लेते हैं। ये डाक्टर की विद्या का ज्ञान है। पर हमारी जिज्ञासा तो जीवन में मुक्ति को पाने की है, जो ब्रह्म ज्ञान के बिना संभव नहीं, तो फिर वह ब्रह्म ज्ञान हमें कहां से मिलेगा और उस ब्रह्म ज्ञान को सीखने के लिए किस चीज की आवश्यकता है? लगन की। पर वह लगन हममें कैसे प्राप्त हो? जब तक हम उसकी कीमत को नहीं जानेंगे, तब तक उसका होना संभव नहीं। डूबे सो बोले नहीं, बोले सो डूबे नहीं। डूबने वाला होवे सावधान, घायल की गत घायल ही जाने और न जाने कोई, और फिर यदि लगन लग जावे तो फिर क्या करें? योग करें।

कौनसा योग? योग कई प्रकार के होते हैं – शरीर का योग, मन का योग आदि। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमें मन का योग करना पड़ेगा, जिसे साधने के लिए अष्टांग योग का आधार भी लिया जा सकता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि। ये आठ प्रकार के साधन बतलाये गये हैं। इसमें भी हर एक योग के अलग–अलग साधन बतलाये गये हैं। जैसे यम के अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह। तो श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि तुम्हारी लगन, ''आत्म तत्त्व'' को जानने की यदि स्थिर हो जाये तो जीवन में सफलता अवश्यम्भावी है।

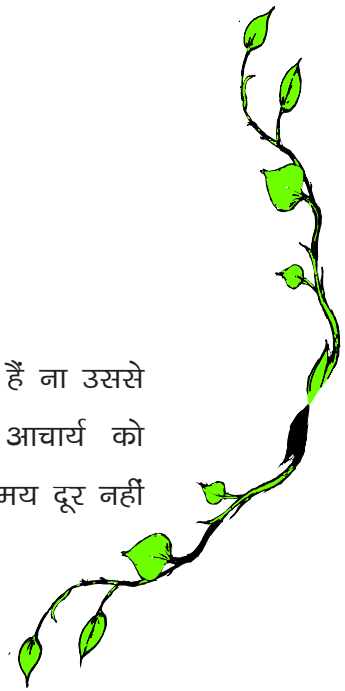

जो लोग गुरु को सजाते संवारते हैं ना उससे कुछ बनने वाला नहीं और जो आचार्य को सजाते संवारते हैं उनके लिए वह समय दूर नहीं जहां नचिकेता पहुंच गये थे।

प्रवचन - 8

सत्य–बोध के उपरान्त प्रकृति सहायक बन जाती है

टेऊँ काल टेई, विञाइ तूं न वेही,
पसिजि पाण पेही, दीओ बारि – देरे।
सुबुह जो सवेरे, गहरी निण्ड घेरे,
अची आलसिनि खे, कन्ध भरि केरे ।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज वे स्वयं को ही जगाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। वह प्रयास कैसा है? किस प्रकार का है? वह ऐसा है कि यदि तुम्हें जीवन में तत्त्व की प्राप्ति करनी है तो बाहर मत देखो। तुम स्वयं अपने अन्दर में ही झांको कि वह परम तत्त्व जो तुम्हारे जीवन का वास्तविक लक्ष्य भी है।

वह क्या है ? कैसा है और किस प्रकार का है ? तब ही कहीं पर जाकर तुमको समझ आयेगी। यह बात कुछ ऐसी ही है। संसार के समस्त लोगों के द्वारा परम शान्ति के लिये ही प्रयास किये जा रहे हैं, फिर वह चाहे छोटा व्यक्ति हो या बड़ा, गरीब हो या अमीर, जवान हो या बूढ़ा, सभी शान्ति के लिये ही प्रयास कर रहे हैं। लेकिन वह शान्ति मिलती नहीं। फिर वह कब मिलेगी ? वेदों में भी घोषणा की गई कि ''जो संसार में आया है वह जायेगा, जो गया है वह आयेगा'', तो शान्ति कैसे ? जो आता है इस संसार में वह हम सब को दिखलाई भी पड़ता है और जन्म से लेकर मरण पर्यन्त दुख ही दुख मिलता है उसे। तो फिर सुख कहां ? जो परम शान्ति के बिना जीवन का वास्तविक सुख संभव नहीं तो फिर वह शान्ति हमें मिले कैसे ? क्योंकि पूरा जीवन यह देखा जाता है कि जाने वाला आ रहा है और आने वाला जा रहा है। जीवन की परम शान्ति शाश्वत सत्य, नित्य प्राप्त तत्त्व से ही संभव है पर पूरा जीवन हमें यह जगत व जगत के पदार्थ बदलते हुए अनित्य व परिवर्तनशील ही दिखलाई देते हैं, जो आता है वह चला जाता है। कोई बीमारी से मर जाता है तो कोई डूब कर, कोई जल कर मर जाता है तो कोई गिर कर। कोई न कोई कारण तो बनता ही है उसके इस संसार से जाने का, जिसकी वजह से उसे पूरा जीवन दुख ही दुख दिखलाई पड़ता है।

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु, जसु अपजसु विधि हाथ ।।

गुरुजी के द्वारा भरत को क्या कहा गया ? – भरत! यह जो छः बातें हैं ना, हानि–लाभ, जीवन–मरण व यश व अपयश। ये सब मेरे हाथ में नहीं बल्कि विधाता (परमात्मा)

के हाथ में होता है। यह सब यदि मेरे हाथ में होता ना, तो आज तुम्हें रोना नहीं पड़ता। महाराजा दशरथ को मरना नहीं पड़ता। श्रीराम को वन नहीं जाना पड़ता और माता कैकेयी के ऊपर जो दाग लग गया ना, पति को मारने का, वह कलंक भी नहीं लगता। यह सब बातें मेरे हाथ में नहीं, तो फिर किसके हाथ में हैं ? शास्त्र कहते हैं कि देव को जाने बिना ये संकट जो हमारे जीवन में आते हैं, वे जाने वाले नहीं। तो फिर देव कौन है हमारे जीवन में ? यदि प्रेम प्रकाशी कहलवाते हो अपने आपको तो बतलाओ उनका देव कौन है ? ''सतगुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज वही हम सभी प्रेम प्रकाशियों के देव हैं''। यमराज जी से नचिकेता के द्वारा पूछे जाने पर – क्या पूछा गया था कि आत्मा क्या है ? आत्म ज्ञान के विषय में पूछा गया था कि वह क्या है ? इस विषय में पुराने जमाने से ही खोज हो रही है कि आत्मा क्या है ? पर इसका पता हमें कैसे लगे ? लेकिन हमारे महाराज आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज को इसका पता लग गया था।

पारब्रह्म मां जलु थ्यो पैदा, तंहिंमां थी धरिती।
धरितीअ मां थ्या गुल फुल मेवा,बाग बण्या बस्ती।।
बागु घुमी गुल्जारु दिठेसे, अजबु चढ़ी मस्ती।
चौरासी लख जूण्युनि खे सो,सांवलु दे थो साहु।।
सचनि जो दूलहु दरियाहु शाहु, आहे राजा रांवलु राउ।
जाहिरु पीरु जमीन ते, सो मालिकु बेपरिवाहु।।
सचनि जो दूलहु दरियाहु शाहु ।

महाराज जी को जान (सूझ) पड़ गयी थी, समझ में आ गयी थी बात। जब जीवन के वास्तविक सत्य से परिचय

हो जाता है ना, तो प्रकृति सहायक बन जाती है उनकी। प्रकृति मायने – धरती, अग्नि, जल, वायु व आकाश। पर जीवन के वास्तविक सत्य से कौन परिचित होता है? किसे परम तत्त्व की सूझ पड़ती है? जिसने अपना मन व बुद्धि अपने गुरु को अर्पित कर दी। ''मय्यर्पित मनो-बुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः'' उसे ही जीवन में परम तत्त्व की प्राप्ति होती है।

आचार्य की उपासना से ही शान्ति संभव

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि सभी लोग अपने गुरु की प्रशंसा करते हैं कि नहीं? हम सभी लोग भी अपने गुरु को मानते हैं कि नहीं? यदि कोई भी गुरु की निन्दा करे तो हमें बुरा लगेगा कि नहीं? तो सभी लोग अपने जीवन में गुरु के लिये ही करते हैं। पर गुरु के लिये करने से कोई फायदा नहीं। केवल गुरु के लिये ही सब कुछ करना। दान, पुण्य गुरु के नाम पर करना, आश्रम, चिकित्सालय (हॉस्पिटल) गुरु के नाम पर यह बनवाना, विद्यालय गुरु के नाम पर खोलना, जितने भी धर्म व पुण्य के कार्य हैं ना, वे सब गुरु के नाम से चलाने से क्या होगा? सुख नहीं मिलेगा क्योंकि जो पंथ का आचार्य है ना, उसके प्रति लोगों में अविश्वास, नफरत व अश्रद्धा पैदा हो जायेगी, जो हर प्रकार से हानि का ही कारण है। इसलिए गुरु महाराज जी कहते हैं कि जीवन में शान्ति मिलेगी ही नहीं तो फिर कब मिलेगी जीवन में शान्ति? जब हम अपने जीवन में धर्म व पुण्य के सारे काम आचार्य के लिये ही करेंगे जो सर्वमान्य भी हैं, तो श्री गुरु महाराज जी ने क्या किया था अपने जीवन में जो प्रकृति उनकी सहायक बन गयी थी? अपना मन व

बुद्धि अपने गुरु को ही अर्पित कर दिया था। ढूंढ लिया था उन्होंने अपने जीवन में सही बात को। हम भी प्रयास करेंगे। जब तक यह सभी बातें हमारे समझ में नहीं आती ना, तो जीवन में हमें शान्ति मिलने वाली ही नहीं। प्रयास तो हम जीवन भर शान्ति के लिये ही करते हैं, पर पैदा हो जाती है अशान्ति। काम तो करते हैं हम शान्ति के लिये, पर उसका विपरीत फल निकलता है अशान्ति। पर क्यों? क्योंकि हम अपने गुरु के लिये ही करते हैं, आचार्य के लिये नहीं। अपने ही घर को सजाते संवारते हैं, देश को नहीं। विदेशों में जाकर देखो, वहां के लोग पहले अपने देश को सजाते हैं, घर को नहीं और हमारे यहां के लोग पहले अपने घर को सजाते संवारते हैं, देश को नहीं – इसलिए पीछे होते जाते हैं और बाहर के लोग पहले अपने देश को सजाते संवारते हैं देखो दुबई देश को, पहले वहां पर रेत ही रेत उड़ती थी और अब वह कितना सुन्दर बन गया है। तो जो लोग गुरु को सजाते संवारते हैं ना, उससे कुछ बनने वाला नहीं और जो आचार्य को सजाते संवारते हैं, उनके लिए वह समय दूर नहीं, जहां नचिकेता पहुंच गये थे।

यहां पर तो आप लोगों को हम भुलावे में डाल सकते हैं कि अमुक व्यक्ति बड़ा ही विद्वान, संत महात्मा है। इसको टीका लगाओ, इसको माला पहनाओ, हटो परे, दूर हो जाओ, इनके पास से, गलती से किसी का हाथ न लग जावे इनके ऊपर! पर वहां तो सभी विद्वान लोग बैठे हुए हैं।

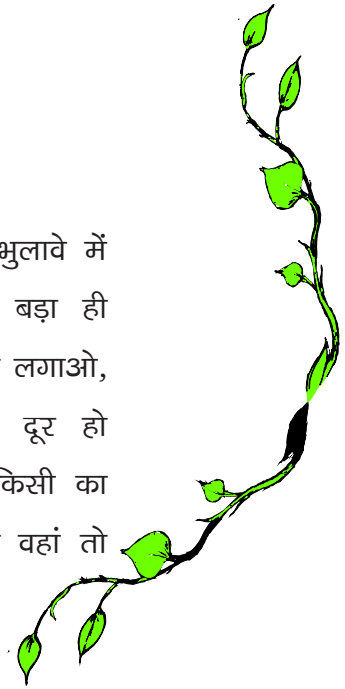

प्रवचन - 9

गुरु मंत्र के सहारे ही तत्त्व की प्राप्ति संभव

छदे निंड निन्दोरा, उथी जागु भोरा,
बुर्धी कीन बोड़ा, चवनि संत टेरे।
सुबुह जो सवेरे, गहिरी निण्ड घेरे,
अची आलसिनि खे, कन्ध भरि केरे।।

प्रातः स्मरणीय परम श्रद्धेय आचार्य सत्गुरु स्वामी टेऊँराम जी महाराज वे स्वयं को ही समझाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। वह प्रयास कैसा है कि सवेरा हुआ है। तुम सावधान हो जाओ और जहां पर तुम को पहुंचना है वहां

पर संध्या होने से पहले ही पहुंच जाओ। ऐसा केवल तुम्हारे साथ तब ही संभव हो पायेगा जब तुम अपने जीवन में पुरानी बातों को याद करोगे। वे बातें क्या थीं? कैसी थीं और किस तरह होकर गुजर गयीं? जब तक तुमने उस इतिहास को याद नहीं किया ना, तब तक वह रास्ता तुम्हें मिलेगा ही नहीं और यदि तुम उस रास्ते पर पहुंच गये तो फिर मंजिल दूर नहीं। पुरानी बातों का इतिहास हमें क्या सिखलाता है? अर्जुन पूछता है भगवान श्रीकृष्ण से कि यह जो गीता का ज्ञान मुझे दिया जा रहा है, क्या वह इससे पहले भी किसी को दिया गया था? तो भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।।

यह योग राज ऋषियों को परम्परा से प्राप्त हुआ और फिर बहुत समय बीत जाने पर लुप्त हो गया। ''भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्'' तू मेरा भक्त व सखा है इसलिए वही पुराना ऐतिहासिक योग मैं तुम्हें सुना रहा हूं। परम्परा का अर्थ होता है – ''एक से दूसरे तक'' एक व्यक्ति से ज्ञान दूसरे व्यक्ति को प्राप्त होता है उस ज्ञान को ही परम्परा से प्राप्त ज्ञान कहा जाता है। पर यहां पर ज्ञान का अर्थ है आत्म ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान आदि तो श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि तुम्हारे जीवन का वास्तविक लक्ष्य जो है परमधाम, निज धाम, श्री अमरापुर स्थान को प्राप्त करने का, जिसे प्राप्त करने के पश्चात् जीव फिर कभी लौट कर इस

संसार में नहीं आता । ''यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'' वह स्थान ऐसा है कि जिसे हजारों सूर्य रोशन नहीं कर सकते । चन्द्रमा, तारे व अग्नि भी उस स्थान को प्रकाशित नहीं कर सकती–''न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः'' और जहां पर पांच तत्वों की बनी हुई यह प्रकृति भी नहीं पहुंच सकती। ऐसे लोक को तुम्हें प्राप्त करना है। पर कैसे प्राप्त करोगे? श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि वह गुरु मंत्र के बिना संभव नहीं। उसी के माध्यम से ही तुम उस लोक को प्राप्त कर सकते हो।

चांद भी चला गया। अब नवरात्रे चल रहे हैं। नवरात्रे समाप्त होने के पश्चात् जब देवियां अपना घर छोड़कर चली जायेंगी तो फिर कौन आयेगा? भगवान श्रीराम जी आयेंगे और फिर उसके पश्चात् कौन आयेगा? श्री टेऊँराम जी महाराज आयेंगे और वही आकर अपना घर बसायेंगे। अब वे आ तो गये हैं फिर वे हमें क्या समझाते हैं कि हमें अपने जीवन में क्या करना चाहिये व क्या नहीं? यदि तुम्हें परमधाम, निजधाम के पद को प्राप्त करना हो तो तुम्हें गुरु की शरण में जाकर उनसे गुरु मंत्र की दीक्षा लेकर उसे ही साधन बनाकर अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करना पड़ेगा। पर कौन सा मंत्र? मंत्र तो बहुत से होते हैं हमें कौनसा मंत्र परमधाम, निजधाम के लोक में पहुंचायेगा? यही श्री गुरु महाराज जी भी सोच रहे हैं।

महाराजा जनक जी के पास रोज पंडित, विद्वान लोग

आते थे ओर कहते थे – महाराज, हम आपको ब्रह्मज्ञान से परिचित करवाते हैं। हम तुम्हें अपना शिष्य बनाते हैं। बड़े–बड़े पंडित लोग रोज राज दरबार में आकर उनसे यही कह कर चले जाते कि तुम परमात्मा हो, तुम ब्रह्म हो और मंत्र देकर चले जाते और कहते – कि अब तुम हमारे शिष्य हो। वे परेशान हो गये और सोचने लगे कि पहुंचना तो मुझे भी उस परम पद तक है जिसके लिए एक गुरु मंत्र ही काफी है। पर इतने सारे मंत्र मेरे किस काम के? हम भी आपको बहुत सारे मंत्र दे सकते हैं। एक मंत्र तो है श्री सत्नाम साक्षी, दूसरा ओम् शिवाय नमः, तीसरा ओम् नमो भागवते वासुदेवाय, चौथा ओम् भूर्भुवः स्वाहा, पांचवां जय श्रीकृष्ण, छठा हर–हर महादेव और सातवां जय झूलेलाल। अब इनमें से जो भी मंत्र तुम्हें अच्छा लगे वह तुम ले लेना। इस प्रकार तुम सभी लोग हो गये मेरे शिष्य। अब किसी और तरफ मत चले जाना। यह सब मैं तुमको बता देता हूं। इसके अलावा यदि तुमने दूसरा गुरु किया ना, तो तुम सबका वास होगा नरक में। इस प्रकार अब तुम सभी लोग मेरे शिष्य हुए या नहीं? महाराज जनक उलझन में फंस गये और सोचने लगे कि अब मैं क्या करूं? यदि मैं किसी को कुछ कहता हूं तो हो सकता है इनमें से किसी को गुस्सा आ जाये। पंडित लोग हैं, ब्राह्मण लोग हैं कुछ भी कह सकते हैं। बड़े आदमी बड़ी बातें। ऐसा मैं इनको कैसे कह सकता हूं कि भाई तुम लोग क्यों मुझे मंत्र दे रहे हो? अब मैं क्या करूं क्या नहीं? राजा जनक

जी सोचने लगे।

जगत के बीच में नाना, किस्म के पंथ हैं भारी।
सुनाते हैं कथा अपनी, भटकते हो गयी देरी।।
बतादे मोक्ष का मार्ग, गुरू मैं हूं शरण तेरी।।

एक दिन उपाय सूझा। बुलाया अपने सेवकों को और आदेश दिया। कल रात को एक बड़ा पण्डाल लगवाया जाये और एक सभा आयोजित की जाये, जिसमें एक हजार गायें जिनके सीगों में सोने की बालियां, पीठ पर रेशमी चद्दरें एवं पांव में चांदी की जूतियां अति उत्तम तरीके से उनका श्रंगार करके खड़ा करवा दिया जाये एवं शहर के सभी विद्वानों, ब्राह्मणों को सभा में आने के लिए आमंत्रित किया जाये।

राजा के आदेशानुसार एक हजार गायें तैयार करवाके एवं ब्राह्मणों को बुलाने के उनके आदेश की पालना की गयी। राजा भी सभा में आकर अपने सिंहासन पर बैठ गया। अब ब्राह्मण लोग, विद्वान लोग आने लगे सभागार में। इस प्रकार हजारों की संख्या में वे लोग आकर इकट्ठे हो गये। राजा जनक अपने स्थान से खड़े होकर सभी ब्राह्मणों को सादर नमस्कार कर सभा को प्रारंभ करते हुए कहने लगे – आप सभी लोग अपने – अपने समय पर आकर मुझे ब्रह्म–ज्ञान देने लगे, अपना शिष्य बनाते रहे, गुरु मंत्र देते रहे। इस तरह मेरे पास अनेक मंत्र व गुरु हो गये। पहुंचना तो मुझे भी उस परम तत्त्व तक है, जिसके लिए एक ही गुरु, एक

ही मंत्र काफी है। फिर इतने सारे गुरु इतने सारे मंत्र, मैं उलझन में फंस गया हूं कि अब मैं क्या करूं, क्या नहीं करूं? मेरे लिए कौनसा गुरु व गुरु मंत्र उचित होगा। इसी उलझन में से निकलने के लिए ही आज मैंने इस सभा का आयोजन करवाया है। आप सभी लोगों से मेरी विनती (प्रार्थना) है कि आप लोगों में से जो कोई ब्रह्म ज्ञानी हो तो वह उठकर इन सभी गायों को ले जाये।

सभा में बिल्कुल शान्ति हो गयी। राजा जनक कह तो गये पर सभा में उठे कौन? सभी ब्रह्म ज्ञानी हैं पर उठे कौन? वे सभी लोग राजा को अपने – अपने समय पर तो कह ही चुके थे कि हम ब्रह्म ज्ञानी हैं पर अब इस समय इतनी बड़ी सभा में उनमें से उठकर कौन कहे कि मैं ब्रह्म ज्ञानी हूं? कौन दम भरे कि मैं ब्रह्म ज्ञानी हूं? तुम्हारे आगे तो मैं कह दूंगा कि मैं ब्रह्म ज्ञानी हूं क्योंकि तुम लोगों को तो आता नहीं। तुम लोगों को तो मैंने उलझन में डाल दिया ना? पर वहां तो साधारण लोग बैठे हुए थे नहीं ना। यहां पर तो आप लोगों को हम भुलावे में डाल सकते हैं कि अमुक व्यक्ति बड़ा ही विद्वान, संत महात्मा है। इसको टीका लगाओ, इसको माला पहनाओ, हटो परे, दूर हो जाओ, इनके पास से। गलती से किसी का हाथ न लग जावे, इनके ऊपर, पर वहां तो सभी विद्वान लोग बैठे हुए हैं। राजा तो कहकर अलग हो गये। अब तो वे लोग ही अपने आप में फैसला करेंगे कि उनमें से ब्रह्म ज्ञानी कौन है?

सिन्धी में कहते हैं – ''कुटीअ खाऊ मजनूं घणा पर, रत देऊ मजनूं को हिकिड़ो''। कहा गया है कि मजनूं दो तरह के होते हैं। सारी सभा शान्त थी उठे कौन? कौन कहे कि मैं ब्रह्मज्ञानी हूं? इतने सारे विद्वानों में से उठकर यदि कोई कहे ना कि मैं ब्रह्मज्ञानी हूं तो तुरन्त ही दूसरा उठ कर कहेगा क्यों भाई! तुम ब्रह्मज्ञानी हो तो क्या हम ब्रह्मज्ञानी नहीं हैं? सारे संसार में एक तू ही ब्रह्मज्ञानी है क्या ? इस प्रकार उन सभी आये हुए ब्राह्मणों, विद्वानों के बीच में झगड़ा हो जायेगा। तुम और हम जब चलते हैं ना रेलगाड़ी में, तो डिब्बा चाहे बिना रिजर्वेशन का हो और गाड़ी जब छोटे स्टेशन पर रुकती है तो गांव के लोग पगड़ी बान्धे हुए, अनपढ़, उनको हम कह देते हैं उतरो – उतरो यह डिब्बा तो रिजर्वेशन का है, फिर चाहे वह बिना रिजर्वेशन वाला ही क्यों न हो। फिर वे लोग उतर पड़ते हैं। ऐसा तो केवल अनपढ़ को ही कहा जा सकता है ना, जो नहीं जानता। उसकी जगह यदि पढ़ा लिखा व्यक्ति हो तो कह देगा ना कि मैं जानता हूं कि यह डिब्बा रिजर्वेशन का है या बिना रिजर्वेशन का तो, क्या वह उस डिब्बे में से उतर पड़ेगा? नहीं उतरेगा। राजा जनक शान्त करके बैठे हुए थे और आये हुए सब लोग भी शान्त बैठे हुए थे अब उनमें से उठकर कहे कौन कि मैं ब्रह्मज्ञानी हूं?

इस बीच सभा में से एक ब्राह्मण उठा और उठकर कहने लगा – ''मेरी इन समस्त ब्रह्मज्ञानियों को नमस्कार है'' मुझे चाहिये दूध के लिए गायें और अपने चेलों से कहने

लगा ले चलो इन सभी गायों को अपने आश्रम में। अक्षर क्या कहे थे उसने? ''मेरी ब्रह्मज्ञानियों को नमस्कार है'' वह तो चला सभी गायों को लेकर अपने आश्रम में। इस बीच दूसरे सभी आये हुए विद्वान, ब्राह्मण अपने आप में एक–दूसरे से सलाह–मशविरा करने लगे कि भाई यह तो सभी गायें ले जा रहा है अपने आश्रम में। राजा जनक तो चुपचाप अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे। दूसरे सभी एक दूसरे से विचार विमर्श करने लग गये। उनमें से एक ब्राह्मण बोला–गायें ले जाने वाले ऋषि (ब्राह्मण) से, जिसका नाम था ऋषि याज्ञवल्क्य जी, कि क्या एक तुम ही ब्रह्मज्ञानी हो? हम क्या अज्ञानी हैं? इस प्रकार ऋषि याज्ञवल्क्य जी से दूसरे सभी विद्वान, ब्राह्मण सवाल जवाब करने लगे। बहुत से सवालों के जवाब उन्होंने दिये। अन्त में उन्होंने कहा कि मैं तुमसे एक सवाल का जवाब पूछता हूं। अब शर्त यह है कि यदि तुम में से किसी ने उसका सही उत्तर नहीं दिया, ना तो उसकी गर्दन धड़ से अलग हटकर यहीं पर गिर जायेगी। उनमें से किसी एक से जो बहुत ज्यादा सवाल जवाब कर रहा था ऋषि याज्ञवल्क्य जी ने एक सवाल पूछा। जिसका जवाब वह दे न सका – उसी समय उसका सिर धड़ से अलग हो गया।

तो ऐसे भी लोग थे इस दुनिया में। ऐतिहासिक ग्रन्थ जब हम लोग पढ़ेंगे ना, तब ही पायेंगे कि मंत्र का अर्थ क्या होता है। ऐसा थोड़े ही है कि जिसको जो मंत्र अच्छा लगे उसे वही मंत्र दे दिया। आते हैं हमारे पास भी कई प्रेमी कि स्वामी

जी हमें भी नाम–दान की दीक्षा दे दो। हमें भी कोई गुरु मंत्र दे दो। अरे। भाई यह कोई दुकान थोड़े ही है कि मिर्च लेकर के आओ, गुड़ लेकर आओ, माचिस लेकर आओ। वह तो सारा समय खुली रहती है। जब चाहो, जो भी चीज चाहो, वह दुकान पर मिल जाती है। इस प्रकार तो नाम की महिमा ही खत्म हो जाती है। उसकी कीमत ही खत्म हो जाती है। नाम की तो महिमा ही कुछ और होती है, इसे तो केवल विद्वानों ने जाना कि इसकी कीमत क्या होती है?

परमपद की प्राप्ति ज्ञान से या विज्ञान से

श्री गुरु महाराज जी कहते हैं कि परमपद की प्राप्ति गुरु मंत्र के सहारे ही होती है। तो वह मंत्र तुम्हारे भीतर कौनसा ज्ञान उत्पन्न करेगा? और फिर वह परम तत्त्व ज्ञान से मिलेगा या विज्ञान से? **''ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिंद वक्ष्याम्यशेषतः''** भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – अर्जुन! मैं तेरे को वह तत्त्व ज्ञान विज्ञान सहित बतलाऊंगा। **''यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते''** जिस विज्ञान को जानकर फिर संसार में तेरे लिए जानने योग्य और कुछ भी नहीं रह जाता। जब जीवन में तुम्हारे भीतर इस विज्ञान को जानने की इच्छा उत्पन्न होवे ना, तब ही कहीं पर जाकर तुम इस विषय पर सोचना। तो श्री गुरु महाराज जी कहते हैं – ज्ञान क्या होता है और विज्ञान क्या होता है?

यह क्या है? माईक। सभी को इसका नाम आता है कि नहीं? तो फिर यह क्या हुआ? ज्ञान। पर यह बना

कैसे ? यह है विज्ञान। अब तुम बनाकर दिखाओ इस माईक को। क्या–क्या इसमें पड़ता है ? किन–किन चीजों को मिलाने से यह बनता है ? इसका तो हमें ज्ञान नहीं। नाम तो पता है हमें इसका कि यह माईक है, यह तो हुआ ज्ञान पर यह बनता कैसे है ? इसे कहते हैं विज्ञान। जिसका हमें ज्ञान नहीं। इस प्रकार ज्ञान तो सभी को होता हैं अपना नाम किसे याद नहीं। है कोई ऐसा जिसे अपने नाम का पता न हो ? कम्प्यूटर, इंटरनेट, एटम बम्ब इन सभी का नाम याद है सबको, यह तो हुआ ज्ञान। पर यह सब बनते कैसे हैं ? क्या मैं इनका निर्माण कर सकता हूं या नहीं ? इसे कहते हैं विज्ञान। **"ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः"** जब इस प्रकार के विज्ञान को सीखने की भीतर में जिज्ञासा उत्पन्न होवे ना, तब ही गुरु के पास जाना चाहिये। तू ब्रह्म है, तू ईश्वर है, तू परमात्मा है। मैं ब्रह्म हूं तो सही, पर कैसे हूं ? यह मैं नहीं जानता। जब चोर को यह कहा जाये कि भाई तू चोर है, तो वह कहेगा नहीं कि मैं चोर कैसे हूं ? यदि हमें कोई यह कहे कि भाई तुम ब्रह्म हो तो फिर हम भी कहेंगे ना कि हां भाई मैं ब्रह्म हूं तो सही, पर कैसे हूं ? और फिर यदि कोई कहे कि तुम चोर हो, तो हम उसे कहेंगे नहीं कि भाई हम चोर कैसे हैं ? जब एक चोर को ही इतनी बुद्धि होती है, और कहता है कि बताओ! मैं चोर कैसे हूं ? तो फिर एक साधारण आदमी को यदि तुम कहो कि तुम ब्रह्म हो, तुम ईश्वर हो, तुम परमात्मा हो, तो फिर वह कहेगा नहीं कि मैं ब्रह्म कैसे हूं ?

एक माई को संत ने कहा – कि माई तुम तो ब्रह्म हो। घर पर आकर उसको पेट में दर्द हो गया तो कहने लगी आग लगे ऐसे संतों को जो कहते हैं माई तू तो ब्रह्म है। अब पता चल रहा है मुझे कि ब्रह्म क्या होता है ? तो श्री गुरु महाराज भी कहते हैं कि यदि जीवन में तुम्हें परमपद, परम तत्त्व की प्राप्ति करनी है, तो अपने भीतर उस विज्ञान को ही जानने की इच्छा जागृत करो, जिसके बाद तुम्हारे लिये इस जगत में और कुछ भी जानना बाकी नहीं रह जायेगा। प्रयास करेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी।

श्री प्रेम प्रकाश मण्डल द्वारा प्रकाशित सत्साहित्य

हिन्दी

1.	श्री प्रेम प्रकाश ग्रन्थ	301/–
2.	सद्गुरु टेऊँराम जीवन चरितामृत (प्रथम–द्वितीय भाग)	50/–
3.	सद्गुरु टेऊँराम जीवन चरितामृत (तृतीय–अन्तिम भाग)	75/–
4.	अमरापुर वाणी (भजन संग्रह)	30/–
5.	अमर कथा	10/–
6.	अमरापुर दर्शन	5/–
7.	यमराज नचिकेता (कविता)	5/–
8.	चूड़ाला शिखरध्वज (कविता)	5/–
9.	श्री प्रेम प्रकाश दोहावली	2/–
10.	प्रार्थना	10/–
11.	ब्रह्मदर्शनी (पद)	10/–
12.	स्वामी सर्वानन्द जीवन चरितामृत (प्रथम भाग)	5/–
13.	स्वामी सर्वानन्द जीवन चरितामृत (द्वितीय भाग)	10/–
14.	साक्षी दर्शन	2/–
15.	स्वामी सर्वानन्द सन्देश	25/–
16.	सद्गुरु टेऊँराम चालीसा	1/–
17.	गुरु आराधना (सद्गुरु टेऊँराम महिमा भजन)	15/–
18.	गुरु वन्दना (स्वामी सर्वानन्द महिमा भजन)	15/–
19.	वामन बली (कविता)	5/–
20.	कवितावली छन्दावली	2/–
21.	जन्म साखी (सद्गुरु टेऊँराम जी)	3/–
22.	नित्य नियम प्रार्थना	5/–
23.	स्वामी गुरुमुखदास भजन माला	2/–
24.	स्वामी गुरुमुखदास दोहावली	2/–

सिन्धी

1.	श्री प्रेम प्रकाश ग्रन्थ	151/–
2.	अमरापुर वाणी (देवनागरी लिपि)	30/–
3.	सद्गुरु टेऊँराम जीवन चरितामृत (प्रथम–द्वितीय भाग)	50/–
4.	सद्गुरु टेऊँराम जीवन चरितामृत (तृतीय–अन्तिम भाग)	50/–
5.	स्वामी सर्वानन्द सन्देश	25/–
6.	स्वामी सर्वानन्द जीवन चरितामृत (प्रथम भाग)	10/–
7.	स्वामी सर्वानन्द जीवन चरितामृत (द्वितीय भाग)	10/–
8.	स्वामी शान्ति प्रकाश जीवन चरित्र	30/–
9.	साक्षी दर्शन	2/–
10.	गुरु आराधना (सद्गुरु टेऊँराम महिमा भजन)	10/–
11.	प्रार्थना	5/–
12.	नित्य नियम प्रार्थना	5/–

अंग्रेजी

1.	सद्गुरु टेऊँराम जीवन चरितामृत (प्रथम–द्वितीय भाग)	10/–
2.	प्रार्थना	3/–
3.	ब्रह्मदर्शनी	50/–
4.	स्वामी सर्वानन्द जीवन चरितामृत (प्रथम भाग)	5/–
5.	स्वामी सर्वानन्द जीवन चरितामृत (द्वितीय भाग)	50/–
6.	अमरापुर दर्शन	2/–
7.	गुरु आराधना (सद्गुरु टेऊँराम महिमा भजन)	10/–
8.	स्वामी सर्वानन्द सन्देश	25/–
9.	नित्य नियम प्रार्थना	5/–

:: प्राप्ति स्थल ::

श्री अमरापुर स्थान, जयपुर

फोनः 0141–2372423, 2372424

सभी प्रेम प्रकाश आश्रमों पर भी उपलब्ध है।